सरल हृदया

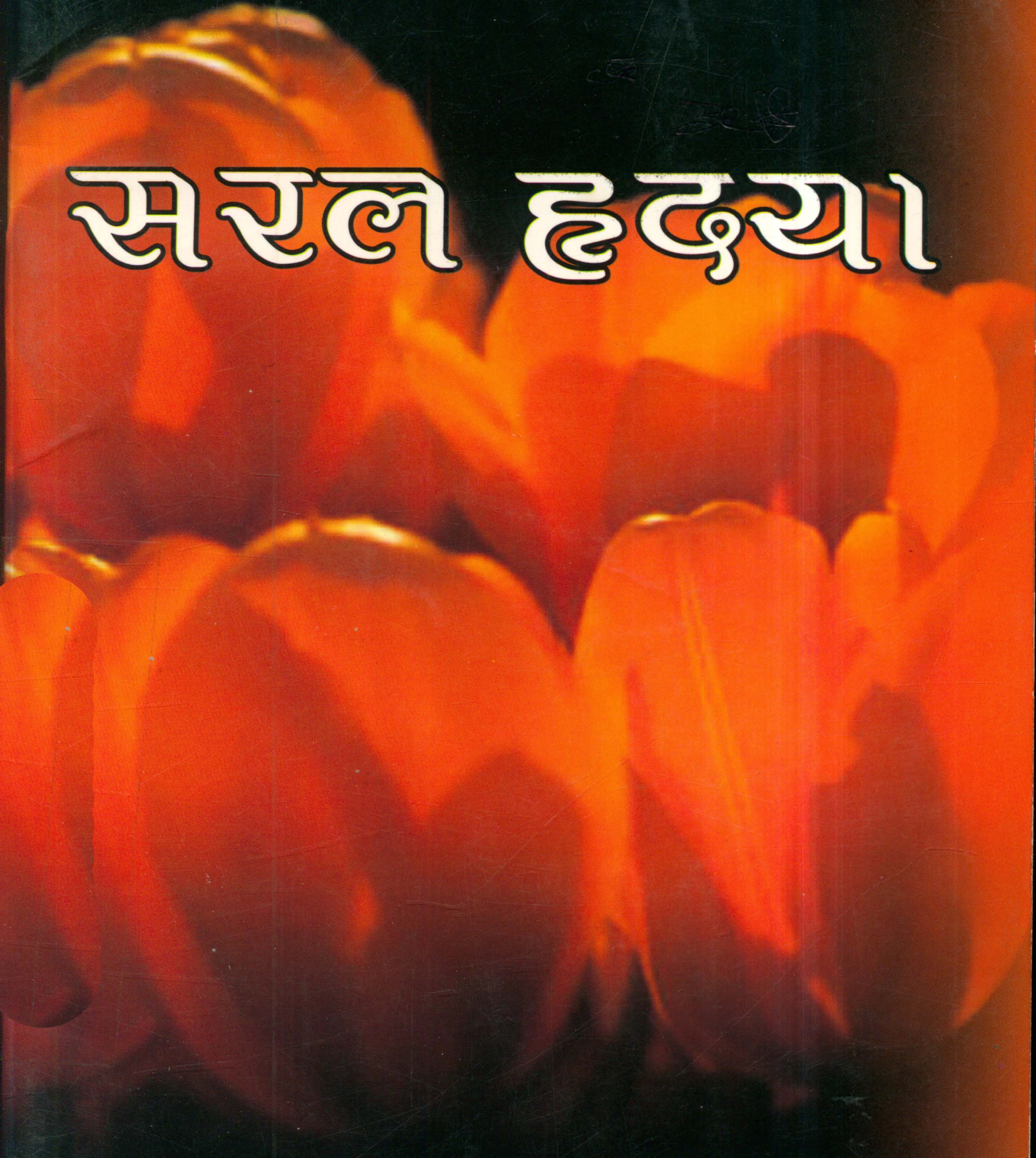

: लेखक सम्पादक :

मुनिराज श्री जयानंद विजयजी

॥ श्री महावीर स्वामी ने नमः ॥
॥ प्रभु श्री राजेन्द्र सूरीश्वराय नमः ॥

सरल हृदया

: दिव्याशीष :

आ.श्री विद्याचंद्र सूरीश्वरजी म.

मु.श्री रामचंद्र विजयजी म.

नम्र सूचन

इस ग्रन्थ के अभ्यास का कार्य पूर्ण होते ही नियत समयावधि में शीघ्र वापस करने की कृपा करें. जिससे अन्य वाचकगण इसका उपयोग कर सकें.

लेखक सम्पादक :

मुनि श्री जयानन्द विजय

पुस्तक का नाम :- सरल हृदया

लेखक :- मुनि जयानन्द विजय

विक्रम संवत् :- २०६३

प्रकाशक :- श्री गुरु रामचंद्र प्रकाशन समिति, भीनमाल

:प्राप्ति स्थान :

शा देवीचंद छगनलालजी
सदर बाजार, भीनमाल-३४३०२९
फोन : (०२९६९) २२०३८७

श्री आदिनाथ राजेन्द्र जैन पेढ़ी,
साँथू.३४३ ०२६
फोन :(०२९६९) २५४२२१

श्री विमलनाथ जैन पेढ़ी
बाकरा (राज.)-३४३ ०२५

शा नागालालजी वजाजी खींवसरा
शांतिविला ऐपार्टमेन्ट, र्त.न बत्ती,
काजी का मैदान, गोपीपुरा, सुरत.
फोन : (०२६१)२४२२६५०

महाविदेह भीनमाल धाम
तलेटी हस्तगिरी लिंक रोड़,
पालीताणा-३६४ २७०
फोन : (०२८४८)२४३०१८

शासनदीपिका प्रवर्तिनी
विदुषी साध्वीजीश्री मुक्तिश्रीजी के
स्वर्गवास के समय दोनों गच्छाधिपतियों के
"हृदयोद्गार"

卐

"गच्छ चिंता पारदर्शिता एवं गंभीरतादि अनेक गुणों से अलंकृत वरिष्ठ श्रमणीरत्ना को खोकर समाज एवं गच्छ ने एक महान् धरोहर खो दी है जो कि अपूरणीय भारी क्षति है।"

– राष्ट्रसंत शिरोमणि आ.श्री हेमेन्द्रसूरीश्वरजी

卐

"निश्चित् संघ की ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ आत्मोत्कृष्ट भाव की साधिका दीर्घ संयम पर्याय धारिणी, अपने उदार स्वभाव के कारण सब की प्रिय एवं अंतिम श्वास तक अपनी त्याग भावना एवं उत्कृष्ट संयम साधना संपन्न थी।"

– राष्ट्रसंत आ.श्री जयन्तसेनसूरीश्वरजी

卐

आर्थिक सहयोगी

卐

प्रवर्तिनी शासनदीपिका
विदुषी सा. श्री मुक्तिश्रीजी के
संयम अनुमोदनार्थे
थराद निवासी
भणसाली कांतिलाल अमुलखभाई
परिवार

धर्मपत्नि मधुबेन कांतिलाल

सुपुत्र - नरेशकुमार, अशोककुमार,
दिलीपकुमार, शैलेषकुमार

पुत्रवधु - मंजुलाबेन, संगीताबेन,
अल्पाबेन, तृषाबेन

पौत्र - लेवीश, स्विटेश, चिंतन, आयुष,
निर्पेक्ष, विराज, भद्र

फर्म : मुंबई - सूरत

“सरल हृदया”

जन्म शब्द एक बात का संकेत करता है कि 'ज' से जिसका जन्म है उसका 'म' से मृत्यु निश्चित है। बीच में 'न्' संकेत करता है जिसने अपने जीवन में नमो अरिहंताणं में प्रथम अक्षर पर रहे हुए 'न' को अपना लिया उसका जीवन सुगंधमय बन गया।

'न' का सीधा सादा अर्थ है नहीं चाहीए। न जन्म चाहिए, न मृत्यु चाहिए। जहाँ न जन्म है, न मरण है वैसा स्थान, नहीं चाहिए की आराधना से ही प्राप्त होता है।

नमस्कार महामंत्र का न, नहीं चाहिए का हि उद्घोष करता है। इस पंच मंगल महाश्रुतस्कंध में नहीं चाहिए कि प्रतिज्ञा वालों को ही स्थान मिला है।

'नहीं चाहिए' का मानस बनाना कोई सामान्य व्यक्ति का खेल नहीं है। उसके लिए तो पूर्वभव की आराधना का बल या इस भव का दृढ़ निर्णय चाहिए।

अनादि अनंतकाल से 'नहीं चाहिए' के अनुपम मंत्र जाप को आत्मसात कर अमल में रखनेवाले अनंतानंत आत्माओं ने पंच मंगल महाश्रुतस्कंध में स्थान पाकर 'न जन्म न मरण' जहाँ है उस स्थान को प्राप्त कर लिया है। अनेक आत्मा 'न जन्म न मरण' ऐसे स्थान को पाने के लिए आज भी प्रयत्नशील हैं।

जिनको ऐसा स्थान पाना हो उनको सर्व प्रथम पंच परमेष्ठि के पंचम पद को प्राप्त करना अनिवार्य है। साधुपद को पाये बिना कोई भी व्यक्ति न जन्म, न मरण रूपी सिद्ध पद को प्राप्त नहीं कर सकता। जितने भी सिद्ध बनें वे सभी साधु पद पाकर ही।

जिनशासन ही एक ऐसा शासन है जहाँ धर्माराधना के लिए जाति, कूल, धनी, निर्धन, अमीर, गरीब का कोई भेदभाव नहीं है। यहाँ मैतार्य से लेकर महाराजा तक सभी साधु बनकर आत्म कल्याण करनेवाले हुए हैं।

चरित्र नायिका का जन्म भी सोनी कूल में हुआ था। परंतु पूर्वभव की

आराधना के फल रूप में नौ महिने की आयु में ही साध्वीजी के करकमलों में समर्पित होना। दश वर्ष की आयु में दीक्षित बनना यह सब पूर्व भव की उत्कृष्ट आराधना का ही फल है।

यहाँ नीचे उनका जन्म से लेकर अंत तक का अति संक्षेप में जीवन चरित्र का वर्णन दिया है।

मेरे जीवन में उनका प्रथम परिचय साध्वी श्री चंद्रप्रभाश्रीजी के तपश्चर्या के पारणे के प्रसंग पर आज से ४० वर्ष पूर्व हुआ था। और उस समय से लगाकर आज दिन तक उनसे सतत सम्पर्क बना रहा।

उनकी सरलता, सज्जनता, समता, सहिष्णुता आदि पराकाष्ठा की थी।

उनके सद्‌भावों से प्रेरित होकर ही यह छोटा सा जीवन चरित्र प्रकाशित किया है।

इसमें संक्षिप्त जीवन चरित्र, चातुर्मास की यादि एवं बाल्यकाल से प्रौढ़ावस्था तक के उनके विचार जो लेखों में कलम बद्ध हुए हैं वे लिये हैं।

उनके जीवन की सब से बड़ी उपलब्धि कोई है तो **अंतिम समय तक विहार पैदल चलकर ही किया।** वर्तमान में जहाँ तीस पैंतीस वर्ष की आयु वाले साधु-साध्वी भी धड़ल्ले से चेयर तक का उपयोग कर रहे हैं उस युग में अनेक साध्वीजीयों की गुरुणी बनने के बाद आराम करने का तो नाम ही नहीं था। हो सका वहाँ तक स्वयं का काम स्वयं ही करती थीं।

वर्तमान के साध्वी समुदाय को इनके जीवन से अप्रमादी रहना सीखना चाहिए। जिन्होंने उनको नजदीक से देखा है, परखा है उनके जीवन में उनका स्थान बना ही है।

गुड़ा बालोतान् **- जयानंद**

ज्ञानपंचमी, २०६३

पूजनीय, वंदनीय गुरुवर्या मुक्तिश्रीजी म.सा.
जीवन परिचय

पावन जन्म भूमि	-	कुक्षी (म.प्र.)
जन्म तीथी	-	सं. १९८१ श्रावण वदी ११ मंगलवार दि. १७ जुलाई
माता का नाम	-	गंगाबाई
पिता का नाम	-	सितरचंदजी सोनी
जन्म नाम	-	लीलाबाई
दीक्षा तीथी	-	माघ शुक्ला पूर्णिमा संवत १९९१
दीक्षा स्थल	-	अहमदाबाद, हट्ठीभाई की वाडी
बड़ी दीक्षा	-	संवत १९९३
बड़ी दीक्षा स्थल	-	बागरा (राजस्थान)
दीक्षा दाता गुरु	-	प.पू.शांतमूर्ति भूपेन्द्रसूरिजी म.सा. व त्यागी तपस्वी यतिन्द्रसूरिजी म.सा.
गुरुमाता	-	परमोपकारिणी श्री भावश्रीजी म.सा. व वात्सल्यवारिधी श्री हेतश्रीजी म.सा.
शासनदीपिका पद	-	संवत २०४८, कोयम्बतुर
प्रवर्तिनी पद	-	संवत २०५०, मोहनखेड़ा तीर्थ
स्वर्गवास	-	संवत २०६३, भाद्रवा वदि ३०, आहोर

पू. गुरुवर्या मुक्तिश्रीजी म.सा. के चातुर्मास

(ये संवत शास्त्रीय [मारवाड़ी] हैं)

संवत	स्थल	संवत	स्थल	संवत	स्थल
१९९२	थराद	२०१६	आहोर	२०४०	आहोर
१९९३	बागरा	२०१७	थराद	२०४१	मोधरा
१९९४	आहोर	२०१८	थराद	२०४२	भीनमाल
१९९५	गुड़ा बालोतान	२०१९	थराद	२०४३	जालोर
१९९६	भैसवाड़ा	२०२०	सियाणा	२०४४	फीरोजाबाद
१९९७	आहोर	२०२१	आहोर	२०४५	राजबंदर
१९९८	पाली	२०२२	जालोर	२०४६	विजयवाडा
१९९९	पालीताणा	२०२३	आहोर	२०४७	मद्रास
२०००	पालीताणा	२०२४	आहोर	२०४८	कोयम्बतुर
२००१	पालीताणा	२०२५	आहोर	२०४९	बैंग्लोर
२००२	अहमदाबाद	२०२६	पालीताणा	२०५०	खाचरौद
२००३	बागरा	२०२७	अहमदाबाद	२०५१	पालीताणा
२००४	थराद	२०२८	आहोर	२०५२	पालीताणा
२००५	थराद	२०२९	आहोर	२०५३	पालीताणा
२००६	खाचरौद	२०३०	आहोर	२०५४	खाचरौद
२००७	उज्जैन	२०३१	सियाणा	२०५५	पालीताणा
२००८	जावरा	२०३२	थराद	२०५६	बागरा
२००९	अलीराजपुर	२०३३	आहोर	२०५७	भैसवाडा
२०१०	कुक्षी	२०३४	आहोर	२०५८	आहोर
२०११	रिंगनोद	२०३५	आहोर	२०५९	जालोर
२०१२	मंदसौर	२०३६	आहोर	२०६०	गुड़ा बालोतान्
२०१३	रतलाम	२०३७	आहोर	२०६१	बाकरा
२०१४	खाचरौद	२०३८	आहोर	२०६२	नून
२०१५	आहोर	२०३९	आहोर	२०६३	आहोर

"जीवन कथा"

इस संसार में अनेक जीव उत्पन्न होते हैं और पानी के बुदबुदे की तरह नष्ट हो जाते हैं। किन्तु जन्म उन्हीं का सार्थक है जो संसार में अपना व दूसरों का आत्म कल्याण कर जाते हैं।

वैसी ही एक महान आत्मा अनेक जीवों की उपकारिणी वर्तमान में शुद्ध निर्मल त्याग से परिपूर्ण विचरण कर रही थी। इतनी वृद्धावस्था में गांवोगांव-नगर-नगर अनेक प्रान्तों में परोपकारार्थ पैदल ही विहार यात्रा करती थी।

जन्म :

ऐतिहासिक धन्यधरा मनोहर मालव में कुक्षी सुन्दर नगर है। वहाँ पर स्वर्णकार श्री चत्तरचंदजी सोने-चांदी के व्यवसायी थे। आप की धर्मपत्नि गंगा बाई की कुक्षी से उच्चग्रह शुभचन्द्र योगे विक्रम संवत १९८१ श्रावण वदी एकादशी को एक बालिका का जन्म हुआ।

बचपन-भोलापन से भरा हुआ, मुखारविन्द अमितहास्य से भरपूर, बालिका का नाम, लीलाकुमारी रक्खा गया। 'तम्हा संयोग संबंध, सम्बन्धमा भाषण पूर्वमाहुं' जिन जिन आत्माओं का जहाँ तक सम्बन्ध रहता है तब तक पूर्वभव सम्बन्धानुसार सामिल रहते हैं, सम्बन्ध पूरा होने पर सब अपने अपने रस्ते चले जाते हैं।

बालिका की आयु मात्र नव मास की थी और महाराज सा. गुरुणी श्री भावश्रीजी कुक्षी पधारीं। माता-पिता की पुत्री के रूप में रहने का सम्बन्ध मात्र नव मास ही का था।

नौ महिने की बालिका को पूर्व के सम्बन्धानुसार पूज्य श्री भावश्रीजी म.सा. को वहोरा दी, माता-पिता के पास शासन की धरोहर के रूप में पालणपोषण द्वारा बालिका दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी।

जिसने पूर्व भव में ज्ञानावरणिय कर्म का क्षय किया हो, ज्ञान-ज्ञानियों की सेवा-आराधना की हो, उनको जन्मते ही निर्मल आत्मबोध का ज्ञान मिल जाता है।

बालिका लीलाकुमारी को, जन्म से ही पूर्वभव के संस्कार जागृत हो गये। बुद्धी की विचक्षणता से-पढ़ाई होने लगी कुछ ही समय में प्रतिक्रमण साध्वाचार सूत्रादि का अध्ययन हो गया। दीक्षा के पूर्व लघु सिद्धान्त कौमुदी कंठस्थ कर ली थी।

ये तो संस्कार इनके जन्म से ही थे, ज्यादातर-मौनता, जीवन में सरलता, व्यवहार में शांतता, सदा प्रसन्न चेहरा। स्वाध्याय-ध्यान में निमग्नता। अहमदाबाद में श्रीमद्विजय भूपेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब एवं उपाध्याय श्री यतीन्द्रविजयजी म.सा. का पदार्पण हुआ। गुरुणीजी श्री भावश्रीजी म.सा. आदिठाणा वहाँ बिराजमान थीं।

भोगावली कर्म इस भव के अवशिष्ट नहीं थे, अब तो बालिका लीलाकुमारी दीक्षा के लिए उत्कंठित हो उठी।

दीक्षा का वरघोड़ा :

छोटी-आयु मात्र दस वर्ष की, सजी सजाई, आभूषणों से सुसज्जित-पालखी में बिठाय दी, सबकी ओर देखकर उल्लास के साथ हास्य के फँवारे छोड़ रही थी।

जालोर निवासी शा. गोकुलचन्दजी किस्तुरचंदजी की धर्मपत्नि सोनीबाई ने जूना माधुपुरा से लीलाकुमारी के दीक्षा का वरघोड़ा निकाला।

गुरुगम द्वारा दशवैकालिक सूत्र के चार अध्ययन-प्रकरण-कर्मग्रंथ तत्त्वार्थ सूत्रादि का अध्ययन किया हुआ था।

वरघोड़ा-माणक चौक में आया, भक्तगण एवं जनता बालिका को देखकर हर्षविभोर हो रही थी। गुलाल से पूरा माणिक चौक लाल-लाल हो रहा था। वरघोड़ा गाते-बजाते रतनपोल, मैन बजार, दिल्ली दरवाजे, होकर हठ्ठीभाई की वाड़ी में आया। सर्वप्रथम बालिका ने अंतिम श्री धर्मनाथ प्रभु की द्रव्य पूजा की।

होनहार बालिका का दीक्षा उत्सव बड़े ठाठ पाठ से चल रहा था। संघ का उत्साह अमाप था। बालिका को देख श्रावक-श्राविकाएँ मुग्ध होकर धन्यवाद देकर अनुमोदना कर रहे थे। लीलाकुमारी हर्षोल्लास के साथ सजी सजाई वीतराग के पावन पंथ पर प्रयाण कर रही थी।

साधु साध्वीजी मंडल के साथ शान्त स्वभावी श्री भूपेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज साहब एवं उपाध्याय श्री यतीन्द्रविजयजी महाराज साहब की निश्रा

में श्री भावश्रीजी की शिष्या के रूप में लीलाकुमारी को वि.सं. १९९१ महा सुदी पूर्णिमा को भागवती दीक्षा प्रदान की। यथानाम तथा गुणों के रूप में नाम रक्खा-मुक्तिश्री, आज का दिन, १० वर्ष की बालिका के जीवन में धन-धन्य दिन था। भावि उत्कर्षता का था। अमर आत्मकल्याण का-मुक्ति मात्र प्राप्त करने का।

दीक्षा के समाचार पेपरों में छप गये थे। उदाहरण के तौर पर जैन साप्ताहिक के निम्न समाचार-

दीक्षा महोत्सव *- अमदावादमां श्री हठीभाईनी वाडीमां महा सुदी १५ ने सोमवारना दि. १८/२/१९३५ना रोज आचार्य महाराज श्री भूपेन्द्रसूरीश्वरजी महाराज तथा व्या.वा.उपा.श्री यतीन्द्रविजयजी म.ना अध्यक्षपणा नीचे मारवाडी ब्हेन लीलावती ब्हेनने धामधूमपूर्वक दीक्षा आपवामां आवी हती. आ प्रसंगे शेठ गोकुलचंदजी कस्तुरचंदजी (जालोर) तरफथी वरघोडो चडाववामां आव्यो हतो. तथा चेनाजी जूहारमल (तखतगढ) तरफथी श्रीफलनी प्रभावना करवामां आवी हती. नव दीक्षितनुं नाम श्री मुक्तिश्रीजी राखवामां आवेल अने तेओश्रीने श्री भावश्रीजीनी शिष्या तरीके जाहेर करवामां आवेल छे.*

- जैन, २४/२/१९३५, पृ. १८०

प्रौढ़ ज्ञान हेतु संस्कृत-प्राकृत भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए व्याकरण पढ़ना शुरु किया।

जैन शास्त्रों-आगमों की भाषा-मूल प्राकृत मागधी है तथा टिकाएँ सभी संस्कृत भाषा में हैं। जहाँ तक साधु-साध्वीजी, भाषा का ज्ञान प्राप्त नहीं करेंगे तब तक आगमों में प्रवेश कैसे होगा? अतः संस्कृत प्राकृत भाषा का ज्ञान अनिवार्य है। जैनागम का मूल सिद्धांत अनेकान्त स्याद्वाद है। इसलिए स्व-पर सिद्धांत समझने के लिए न्याय का अध्ययन जरूरी है। व्याकरण के बाद न्याय ग्रंथों का भी अध्ययन किया।

बुद्धी की विशालता से व्याकरण-साहित्य, न्याय कोष-अलंकार-छंदादि का भी ज्ञान प्राप्त किया, श्री भावश्रीजी एवं हेतश्रीजी की निश्रा में पंडितों द्वारा संस्कृत की बृहत् व्याकरण लघुकौमुदी-सिद्धांत कौमुदी, संस्कृत भाषा का पूर्णज्ञान प्राप्त कर लिया।

व्याकरण को व्यवहार में समझने-एवं वाणी चातुर्य के लिए कवि

कालिदास, माघ, हर्ष, बाणभट्ट, दंडी आदि कविओं के काव्यों का अध्ययन किया। जैन सिद्धांतों को सही समझने के लिए अन्य दर्शनों का अध्ययन आवश्यक है। अब आप गुरुणीजी श्री भावश्रीजी एवं गुरुणीजी श्री हेतश्रीजी आदि साध्वी मंडल के साथ विचरने लगी। किन्तु दैवयोग से दीक्षा के ६ साल बाद ही गुरुणीजी श्री भावश्रीजी का स्वर्गवास हो गया। उसके पश्चात् विदुषी सा.श्री हेतश्रीजी को ही अपनी आदरणीय गुरुणीजी के रूप में स्वीकारकर उनकी निश्रा में एवं उनकी सेवा में हर पल उपस्थित रही। आपश्री में एक विशेषता थी प्रत्येक श्रावक-श्राविकओं में सरलता पूर्वक धार्मिक संस्कार डालना। श्री हेतश्रीजी की सेवा में आहोर में कई चातुर्मास किये।

निस्पृहता तो अत्युत्तम थी। उसका खयाल तो सा.श्री वसंतमाला श्रीजी एवं सा.श्री वसंतबालाश्रीजी की दीक्षा की क्रिया में गुरुणीजी का नाम घोषित करने के प्रसंग पर दीक्षार्थियों के परिवार की इच्छा वि.सा.श्री मुक्तिश्रीजी की शिष्या बनाने की थी। पर वि.सा.श्री मुक्तिश्रीजी ने स्पष्ट कहा कि गुरुणीश्रीजी हेतश्रीजी की ही शिष्या के रूप में घोषित कीजिए। और आखिर हम सब को उनका कहना स्वीकारकर गुरुणीजी का नाम हेतश्रीजी का घोषित करना पड़ा।

श्री मुक्तिश्रीजी ने राजस्थान-गुजरात-मालव-कर्नाटक-आंध्र-उडीसा-बिहार-कच्छ आदि कई प्रान्तों में विचरण-चातुर्मास कर सकलसंघ-जैन-अजैन जनता में आध्यात्मिक ज्ञान संस्कारों को डालती रही। कई विधर्मी लोगों को जैन धर्म के संस्कार डालकर उन्हें सही मार्ग पर लाये।

शासन दीपिका :

आप जैन शासन को दीपक समान जैन-अजैन जनता में देदीप्यमान करती थी। अतः आप के इस महान कार्य से प्रेरित होकर आचार्य श्री हेमेन्द्रसूरीश्वरजी की आज्ञा से कोईम्बतुर नगर में सर्व सकल श्री संघ ने आपको शासन दीपिका की पदवी से अलंकृत किया।

प्रवर्तिनी पदवी

पूरे भारत का संघ मोहनखेड़ा तीर्थ में सम्मिलित हुआ। ज्ञान-क्रिया-एवं वयोवृद्धता, अनुभव आदि गुणों को जानकर छोटी बड़ी सभी साध्वीजीयों को साथ में लेकर चलने की क्षमता देखकर सकल श्री संघ ने

आचार्यदेव श्री हेमेन्द्रसूरीश्वरजी की निश्रा में श्री मुक्तिश्रीजी को **प्रवर्तिनी पदवी** से विभूषित किया।

शुद्ध संयमी-त्यागी एवं आध्यात्मिक योग साधना की मूर्ति स्वरूप, इतनी अवस्था होने पर भी प्रतिदिन साधु क्रिया में प्रमाद रहित रही, प्रतिदिन नवकार महामंत्र का जाप, नवपद जाप तथा गुरुदेव की जप माला, हरदम हर समय करती ही रहती थी। इसीके प्रभाव से आप में एक दैवी शक्ति प्रादुर्भुत हुई थी।

प्रतिदिन एकासण एवं कोई न कोई व्रत तपस्या करती रहती थी। स्वाध्याय-मग्न अपनी शिष्याओं को आध्यात्मिक ज्ञान एवं साधु क्रियाओं का महत्व समझाती रहती थी। आपका मनोबल बहुत दृढ़ था।

जो बहने-आपके संपर्क में आती थी उन्हें धर्मोपदेश देकर-धर्माराधक बनाती रहती थी।

अपने आप ध्यानस्थ होना :

रात्री में जब सारी दुनिया सो जाती थी, सम्पूर्ण कोलाहल शान्त हो जाता था। तब आप अपनी आत्मसाधना, ध्यानस्थ होकर-महामंत्र-चौदहपूर्व के सार रूप नवकार महामंत्र, पंच परमेष्ठी के रंग-गुण व उस स्थान पर पहुंचकर, लोअग्गमुवगयाणं-नमो सया सव्व सिद्धाणं में एकाग्र हो जाती थी। ठिक आपकी आत्मा के भाव-वहाँ पहुंचकर अनंत अरिहंतो-सिद्धों के दर्शन-करके भावविभोर हो जाती थी।

वही दृश्य आपकी आत्मा में समाया हुआ था। सादाई से जीवनयापन-जब तक बने वहाँ तक चारित्र में दोष नहीं लगाना, अपने जीवन के अनुभव अपनी शिष्याओं को सुनाती रहती थी। 'चारित्र यह एक आत्म कल्याण का अपूर्व साधन है।'

भगवान महावीर प्रभु भगवती सूत्र में गौतम स्वामी को बार-बार सचेत करते रहते थे। 'हे गोयम! समयं मा पमायए' हे गौतम एक समय का भी (एक पलक भी) प्रमाद मत करना। सा.श्री मुक्तिश्रीजी भी अपने धर्म परिवार को अप्रमत्त रहने के लिए प्रेरित करती रहती थी।

चारित्र की क्रियाएँ समय-समय पर मन-वचन-काया से निरंतर करते रहना। इनमें प्रमाद करने पर अपनी आत्मा भारी कर्मा बनेगी एवं भार चढ़ेगा। ऐसे विचार सतत रहते थे। जीवन के साधन - जो भी है उनमें

उपयोग रखना, जयणा से चलना, जयणा से बैठना, जयणा से सोना, जयणा से गौचरी लाना व वापरना, कम बोलना-मौन रखना, जयणापूर्वक प्रिय बोलना, उपयोग से प्रत्येक आचरण करना।

वीतराग की वाणी पर पूर्ण श्रद्धा रखकर उपदेश देना, सारा दिन स्वाध्याय-ज्ञान-ध्यान में समय बिताना। किसीके साथ सांसारिक बातों में समय व्यतीत करने का तो सीखा ही नहीं था।

आज अनेक मत मतांतर हैं। अनेक सम्प्रदाय हैं और अनेक गच्छ हैं। सभी में समभावपूर्ण विचारणा एवं राग द्वेष की परिणति से परे रहती थी। और दादा गुरुदेव के द्वारा प्रतिपादित सामाचारी का दृढ़ता पूर्वक पालन मुख्य ध्येय था।

आपके पास सभी धर्मवाले लोग आते थे एवं आप शांत-स्वभावी सरलतापूर्वक आत्म कल्याण की वाणी सुनाती रहती थी।

आपके पास कोई जातपात व छोटे-बड़े का कोई भेदभाव नहीं था।

आपके चारित्र का ऐसा प्रभाव था कि आप का मांगलिक व वासक्षेप लेकर जाता था वह नीतिमय जीवन बिताना प्रारंभ कर देता था।

बहुत से श्रावक-श्राविकाएँ हर वर्ष आपकी सेवा में पहुँचते थे। और आशिर्वाद लेकर यही सोचते थे कि कब हम भी इनके जैसा जीवन प्राप्त करें?

शा. लालचंदजी चंदनमलजी की कई वर्षों से भावना थी कि शासन दीपिका प्रवर्तिनी विदुषी **साध्वीजी श्री मुक्तिश्रीजी** का चातुर्मास करवाना। विनंति करते रहते थे। इस वर्ष योग बना। पर किसीको यह कल्पना भी नहीं थी कि यह चातुर्मास अंतिम होगा।

चातुर्मास प्रवेश सानंद सोल्लास हो गया। स्वास्थ्य स्वस्थ चल रहा था। स्वप्न में नहीं सोचा था कि साध्वी मुख्या का सूर्यास्त हो जायगा। पर्वाधिराज के दश दिन पूर्व कुछ स्वास्थ्य अस्वस्थ हुआ। उपचार प्रारंभ हुआ। दो तीन दिन में स्वस्थता आयी। दो दिन बाद पुनः अस्वस्थता हुई। पुन स्वस्थ हो गये। पर्युषण के दूसरे दिन अस्वस्थता विशेष रही। आशा थी की स्वस्थता आ जायगी पर आशा निराशा में पलट गयी। भाद्रवा वदि ३० के दिन करीबन १०.३० बजे नमस्कार महामंत्र का जाप करते करते मुट्ठिसहियं के प्रत्याख्यान में ही परलोक प्रयाण कर गयी। चारों ओर समाचार भेज दिये

गये।

अंतिम संस्कार में कई नगरों के लोग आये। और अंतिम संस्कार की बोलियाँ भी रेकार्ड रूप में रही।

आपने अपने जीवन में प्रत्याख्यान को भी महत्त्व का स्थान अपनाया हुआ था। ८० वर्ष की आयु में अष्टमी चतुर्दशी का उपवास आयंबिल आदि तप और प्रतिदिन साढ़ पोरिसी का प्रत्याख्यान तो नियमा था ही।

आहार पानी करने के बाद शीघ्र मुट्ठिसहियं का प्रत्याख्यान ले ही लेती थी।

इतनी अस्वस्थता में भी प्रत्याख्यान का ध्यान रखती थी। अमावस्या के दिन औषधी लेने हेतु बड़ी मुश्किल से पोरिसी का प्रत्याख्यान पराया। औषधी ली। तुरंत मुट्ठिसहियं का प्रत्याख्यान स्वयं ने ले लिया। फिर दश मिनिट में तो विदाय ले ली।

शासनदीपिका ने वास्तव में अपने आचार पालन के बल पर शासन दीपाया है।

वे ज़हां भी हो व़हाँ शासन की सेवा में रहे और अतिशीघ्र न जन्म-न मरण के स्थान को प्राप्त करें यही अभिलाषा।

हम उनके आचार पालन को अपनाकर श्रद्धांजली दें यही अभिलाषा।

- जयानंद

कृपा सम्यग्दर्शन की

मयणासुंदरी के पिताजी प्रजापाल राजा ने क्रोधित बनकर एक कुष्ठ रोग से पीड़ित उँबर राणा को पति रूप में दर्शाया, मयणा ने मुंह पर अंश मात्र भी परिवर्तन लाये बिना एक कुष्ठि को पति रूप में स्वीकार किया **यह कृपा सम्यग्दर्शन की है।**

तीन तीन दिन तक बेड़ीयों से जकड़कर अंधेरी कोठरी में चंदनबाला को मूला शेठानी ने डाल दी थी पर उस पर अंशमात्र दुर्भाव न लाकर पारणे के समय अतिथि की राह देखने के जो भाव प्रगट हुए **यह कृपा सम्यग्दर्शन की है।**

गुरुणीजी - श्री भावश्रीजी
(जीवन परिचय)

- लेखिका : बालसाध्वी मुक्तिश्रीजी

अब नयी दुनिया (सभ्यता) यह मानने लगी है कि स्त्रियाँ पुरुषों से होड़ ले सकती हैं। प्रत्येक प्रतियोगिता में समकक्ष ठहर सकती हैं। यद्यपि भारतीय कथा-पुराण साहित्यने यह सहस्त्रों शताब्दियों पूर्व ही घोषित कर दिया था कि - स्त्रियाँ स्वभाव से लज्जाशील एवं विनीता होती हैं। उनके स्वामियों ने इसका दुरार्थ लगाया और उन्हें पारितोषिक रूप में अबला पद प्रदान किया, परन्तु उनकी शक्ति को कोई न समझ सका। उस सीता में कितनी शक्ति थी? कमलावती के शील में क्या तेज था? शिवा महासती का पतिव्रत कैसा सबल था? क्या वसुमती, चन्दनबाला, सुभद्रा, विजया आदि प्रपितामह-भीष्म से कम थीं? एक नहीं, दो नहीं, अगणित ऐसे स्त्री पक्ष के उदाहरण दिये जा सकते हैं। तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि पुरुष स्त्रियों से घट कर होंगे? नहीं। पुरुष और स्त्री दोनों समबली हैं; दोनों एक ही रथ के चक्र हैं। एक ही रथ के दोनों चक्र समान हो सकते हैं। एक दीर्घाकार और दूसरा लघ्वाकार का हो ऐसा नहीं हो सकता। ऐसा कोई भी देश, काल नहीं-जिसमें स्त्रियों नें पुरुषों के बराबर आदर्श न रक्खा हो। उधर लक्ष्मण अखंड व्रती थे तो इधर उर्मिला भी अखंड व्रतिनी थी। उधर राम पत्नीपरायण थे तो इधर सीता भी पतिपरायणा थी। उधर श्री नेमिनाथ इधर राजीमति, उधर पूजनीय महावीर इधर यशोदा। कौन किससे कम, एक से एक आदर्श। अपने अपने मार्ग में प्रत्येक अनन्वय। चिरन्तन साहित्यविद् यह स्वीकार करते हैं कि - आदर्शता में स्त्रियों का पलड़ा भारी है। तप, त्याग, शील, संयम में ये अनन्वया है। पुरुषों से पीछे नहीं। हमारा जैन कथा-साहित्य ऐसे अगणित उदाहरणों से भरा हुआ है। पाठको! यहाँ भी एक ऐसा ही उदाहरण आपके समक्ष रक्खा जाता है जिससे आपको स्त्रीजाति के आध्यात्मिक बल का पता अच्छी प्रकार लग सकेगा।

जैन संघ एक प्राचीन (अनादि से) संस्था है, इसका अहिंसा व्रत, तप, त्याग, शील, संयम, दान, भावना, विश्रुत है। साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका इन चार अंगों से मिलकर यह संघ बनता है। साधुवर्ग के जैसे कठोर एवं आदर्श नियम हैं, वैसे ही साध्वीवर्ग के नियम हैं। जो श्रावक के आचार विचार हैं वही श्राविका के हैं। ये आचार और नियम इतने निर्विकार

हैं कि जैनसमाज लाखों करोड़ों वर्षों से अपने प्राण इन्हीं के बल स्थिर रख सकी है। यह तो समस्त संसार स्वीकार करता है कि जैन साधु और जैन साध्वियों का तप, संयम अद्वितीय और अनिर्वचनीय है। इनसी कठोर तपस्या, इनसा कठोर त्याग अन्यमत के साधु-साध्वियों में देखने को नहीं मिलता। साध्वाचार कितना संकटपूर्ण, कठिन, दुःखभृत है-इसका परिचय देने के लिए प्रस्तुत जीवनचरित्र ही बस है। जैन समाज सी दृढ़ संस्था और दूसरी नहीं है।

कभी जैन करोड़ों थे तो आज लाख रह गये, परन्तु यह संस्था एक दिन विलीन हो जायगी यह मानना भ्रम है। अब जैनसमाज घिस-घिसकर एक सगुण आत्मा बन चुकी है। आत्मा जैसे अमर है वैसे इसका साकार रूप आत्मा अनश्वर से संमिश्रित होकर अमर बन चुका है। देश, काल स्थिति के अनुसार संकोच-विकाश परिवर्तन तो होता ही रहता है। जैनसमाज को यह अमरत्व प्राप्त कराने में स्त्रीजाति का कितना सहयोग मिला है? यह पुरातन साहित्य के अवलोकन से भलीभांति जाना जा सकता है, तो भी दिग्दर्शन कराने के लिये प्रस्तुत जीवनचरित्र लिखकर यहाँ आवृत्ति कर दी जाती है।

. पाठको! अमरत्व अमृत से होता है, इसको वही प्रदान कर सकता है जो स्वयं अमृत है। अमृत एक रस विशुद्ध होता है, उसमें कोई विकार नहीं होता। जैनसमाज ने कितने कड़े उपसर्ग सहन किये, परन्तु आज फिर भी जीवित है। यह हमारा अस्तित्व ही हम में अमृत का भाव सिद्ध करता है। धन्य है उन तीर्थङ्करों, प्रवर्त्तकों को जिन्होंने जैनसंघ की नींव इतनी सुदृढ़ डाली कि यह आप्रलय तक अपना अस्तित्व बनाये रख सकेगी। इन प्रवर्त्तकों ने हमारे चारों अंग श्रावक, श्राविका और साधु, साध्वी इतने स्वस्थ एवं पुष्ट कर दिये हैं कि रोगग्रस्त हो जाने पर भी जैनसमाज का शरीर शव बन जायगा सो नहीं। साधु हमारे आदर्श नेता हैं और साध्वी हमारी नेत्री हैं। हमारी नेत्रीयाँ हमारे नेताओं से पैर मिलाती हुई (कदम बढ़ाती हुई) आगे बढ़ रही हैं और हमें भी आगे बढ़ने को पुरस्सर कर रही हैं।

साध्वीव्रत के बाद का जीवन :

दीक्षा ले लेने पर साधु साध्वी पद उपलब्ध हो ही जाता है, लेकिन यह केवल वेश मात्र होता है। आज देखा जाता है कि **सैकड़े पीछे अस्सी प्रतिशत साधु साध्वी नाम मात्र के होते हैं। न उनमें संयम पालने की समता होती है और न उनसे आचार-व्यवहार का ही सम्यक् परिपालन होता है।**

आज कषाय को जीतना तो पुरुषार्थ के बाहर का विषय हो गया है। ऊपर अस्सी प्रतिशत कहा गया है, इसका अर्थ यह है कि आज भी सद् साधु-साध्वियों का अभाव तो नहीं है, लेकिन अल्प संख्या अवश्य हो गयी है। भावश्रीजी ने आत्महित के लिए चारित्र ग्रहण किया था, न कि संसार से ऊबकर फकीरी धारण की थी। आपने जब से दीक्षा ग्रहण की उस दिन से ही शुद्ध चारित्र को आमरण पालने की दृढ़ भावना कर ली और जीवन को सब ओर से निर्मल बनाने की चेष्टाएँ प्रारम्भ कर दी। निरन्तर इन्द्रियों को स्ववश में रखने के लिए आप सयत्न रहने लगी। शास्त्रोक्त विधि के अनुसार आपने नव प्रकार के ब्रह्मव्रत का परिपालन तो वैधव्यावस्था प्राप्त होने पर ही करना प्रारंभ कर दिया था। अब आप पंच महाव्रत और पंचाचार का पालन तत्परता से करने लगी। मन, वचन, काया पर सदा अधिकार रखने लगी। तात्पर्य यह कि आप अपने साध्व्याचार को पूर्ण रूपेण शास्त्रोक्त विधि के अनुसार निर्मित करना चाहती थी। और वैसा आपने अपने जीवन को बनाकर भी दिखा दिया। अगर ध्यानपूर्वक देखा जाय तो चरित्रनायिका के उज्ज्वल भविष्य के लक्षण बहुत समय पहिले या यों कहिये जन्म के अवसर पर ही दृष्टिगत हो गये थे। यह होनहार प्रतीत होती थी फिर अगर इन्होंने अपने जीवन को आदर्श एवं निर्मल बनाने के लिए कठोर तपस्याएँ, अभिग्रह किये तो इसमें मिथ्या शंका और आश्चर्य क्या है? आप अपने साध्व्याचार को आदर्श एवं उत्तम बनाना चाहती थीं और ऐसे दूषित काल में भी आपने ऐसा कर दिखाया।

हार्दिक बल और निडरता :

साध्व्याचार कितना कठिन एवं कंटकाकीर्ण है इसका सत्य स्वरूप वे ही जान सकती हैं जो साध्वी-पथ प्रागा हैं। साध्वाचार से भी साध्व्याचार अधिक संकटमय दुर्गम है। हम आये दिन साध्वियों की कठिनाई का अनुभव करते रहते हैं। इनको दूर से दूर विहार करना पड़ता है। कभी कभी ये घने जंगलों में चोर, गुण्डों के चंगुल में फंस जाती हैं। ऐसे अवसर पर अकेली साध्वियें भला क्या हाथ दिखा सकती हैं? वैसे फिर जैन साध्वियाँ तो इतनी नियमों से कसी रहती हैं कि उनका परिपालन करती हुई गुण्डों से दो बात भी नहीं कर सकती। लेकिन यह कहावत 'जो दृढ़ राखे धर्म को, ताहि राखे किरतार' वास्तव में अक्षरशः सत्य है। जो धर्म पर दृढ़ है उसकी रक्षा उसका धर्म ही करता है।

(श्री यतीन्द्र प्रवचन हिन्दी में)

साध्वीजी श्री अमरश्रीजी महाराज एवं दो अन्य साध्वियांजी

– साध्वीश्री मुक्तिश्रीजी म.सा.

माघ शुक्ला पंचमी विक्रम संवत १८९५ के शुभ दिन आहोर निवासी सेठ श्रीमान् टीकमजी की धर्मपरायणा, पतिपरायणा धर्मपत्नी की पावन कुक्षी से एक कन्या रत्न का जन्म हुआ। नवप्रसूता कन्या का नाम रखा गया अतियाबाई। बाल्यकाल में ही आपको धार्मिक शिक्षण प्रदान किया और विवाह भी कर दिया गया। विधि का विधान भी कुछ विचित्र ही होता है। वह अगले क्षण क्या करनेवाला है, इसकी खबर किसीको नहीं होती है। मात्र दस वर्ष की अल्पायु में ही अतियाबाई विधवा हो गई। एक वज्रपात हुआ फिर भी उसे सहन किया गया। कोई उपाय भी तो नहीं था।

धार्मिक भाव तो आपके थे ही। आपने जैन भागवती दीक्षा लेने का निर्णय ले लिया और अन्ततः विक्रम संवत् १९२६ **फाल्गुन कृष्णा अष्टमी** के दिन वरकाणा तीर्थाधिपति श्री पार्श्वनाथ प्रभु की छत्रछाया में आचार्य भगवंत श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. के श्रीमुख से दीक्षा मन्त्र स्वीकारकर संयम मार्ग पर चल पड़ी। आचार्य भगवन् ने आपको श्रमणी दीक्षा प्रदानकर आपका नाम साध्वी 'अमरश्रीजी' रखा। आपके साथ ही आपकी सहेली लक्ष्मीबाई को भी दीक्षा व्रत प्रदान किया और नाम रखा गया साध्वी लक्ष्मीश्रीजी। लक्ष्मीश्रीजी अमरश्रीजी की शिष्या घोषित की गयी।

मारवाड़ एवं मालवा के अनेक ग्रामों एवं नगरों में विहार करते हुए आपने जैन धर्म का प्रचार किया और संवत् १९३४ में आप राजगढ़ (धार) पधारी। यहाँ पूज्य श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. के सान्निध्य में चातुर्मास किया। इसी बीच आपने दो बहनों को जैन भागवती दीक्षा प्रदानकर उनका नाम साध्वीजी श्री कुशलश्रीजी एवं साध्वीजी श्री उदयश्रीजी रखा। राजगढ़ से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए आप दाहोद पधारी और वहाँ संवत् १९३४ **माघ शुक्ला अष्टमी** को आपका स्वर्गवास हो गया।

महत्तारिका साध्वीजी श्री विद्याश्रीजी म. :

आपका जन्म शाह देवचन्दजी की धर्मपत्नी श्रीमती चुन्नीबाई की पावन कुक्षी से हुआ था। आपका विवाह भोपावर निवासी श्री भगवानजी के साथ हुआ था। विवाह के तीन वर्ष पश्चात् आप पर वज्रपात हुआ और आपके पति भगवानजी आपको रोती बिलखती छोड़कर इस संसार से विदा हो गये।

एक बार आपकी आँखों में दर्द हुआ। आँखों की यह पीड़ा असहनीय थी। पर्याप्त उपचार कराने पर भी किसी प्रकार का कोई लाभ नहीं हुआ। इस पर आपने शुद्ध भावना से अभिग्रह लिया कि मेरी नेत्र पीड़ा शांत हो जायगी तो मैं दीक्षा ग्रहण कर लूंगी। अभिग्रह लेने के ठीक एक माह पश्चात् आपकी नेत्र पीड़ा शांत हो गयी। परंतु पतिदेव की मृत्यु हो जाने से लौकिक व्यवहार का निर्वाह किया और फिर तीन वर्ष पश्चात् आषाढ़ कृष्णा द्वादशी संवत् १९३४ को राजगढ़ में आपकी दीक्षा हुई और आपका नाम रखा गया **साध्वीजी श्री विद्याश्रीजी** तथा आप साध्वीजी श्री अमरश्रीजी की शिष्या घोषित की गयी।

विनय सम्पन्न साध्वीजी श्री विद्याश्रीजी की कुशाग्रबुद्धि से गुरुणीजी श्री अमरश्रीजी पूर्ण प्रसन्न थी। आपने अपनी तीव्र बुद्धि से थोड़े ही समय में धार्मिक शास्त्रों के साथ व्याकरण, न्याय, साहित्य आदि विविध विषयों का परिपूर्ण अध्ययन कर लिया एवं गुरुगम से एकादशांगी की सटीक अवगाहना की। गुरुणीजीश्रीजी अमरश्रीजी के स्वर्गवास के पश्चात् आपने अपनी विचक्षणमति से श्रमणी संघ की बागड़ोर अपने हाथ में ले ली और उसे जागृतकर उन्नति के पथ पर अग्रसर करने में सफलता प्राप्त की।

आपकी अद्भुत ज्ञानशक्ति से सभी विस्मित थे एवं समाज में आप सब प्रकार से प्रशंसनीय बन चुकी थी। आपको सर्व प्रकारेण योग्य जानकर संवत् १९५२ माघ शुक्ला पूर्णिमा के दिन दादागुरु आचार्य देवेश ने 'महत्तारिका' पद प्रदान किया। आपकी योग विद्या में अत्यधिक रुचि थी। अर्धरात्रि में उठकर आप कभी पद्मासन, कभी उत्कटासन और कभी कायोत्सर्ग और कभी अन्यान्यासन से घण्टों तक योगसाधना करती रहती थी। आपने सिद्धांत कौमुदी, न्याय और काव्य ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया। आपकी शिष्याओं में साध्वीजी श्री पार्वतीश्रीजी, साध्वीजी श्री प्रेमश्रीजी एवं

साध्वीजी श्री मानश्रीजी प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। **संवत् १९६२ मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी** को राजगढ़ में आपने अपनी नश्वर देह का त्याग किया।

प्रवर्तिनी श्रीप्रेमश्रीजी म. :

जालोर जिले के आहोर के निकट काँबा नामक एक ग्राम है। ग्राम काँबा के शाह उमाजी पोरवाल की धर्मपरायणा, पतिपरायणा धर्मपत्नी सौ. लक्ष्मीबाई की कुक्षि से संवत् १९१५ आश्विन शुक्ला पूर्णिमा को एक कन्या का जन्म हुआ। माता पिता ने कन्या का नाम रखा चतुराबाई। चतुराबाई की अपने नाम के अनुरूप ही बचपन से धार्मिक कार्यों में बड़ी रुचि थी। बाल्यकाल से ही चतुराबाई ने देववंदन, गुरुवंदन, प्रतिक्रमण आदि आवश्यक क्रियाओं का अध्ययन कर लिया। संवत् १९२९ फाल्गुन शुक्ला पंचमी के शुभदिन आपका विवाह हरजी निवासी शाह मनाजी बीसा पोरवाल के सुपुत्र भूताजी के साथ सम्पन्न हुआ। परंतु अशुभ कर्मों के उदय से अल्प समय में ही संवत् १९३९ आषाढ़ कृष्णा ९ के दिन आपके पति का देहावसान हो गया और आपको असह्य वैधव्य का दुःख सहन करना पड़ा।

आप परम विदुषी महत्तारिका गुरुणीजी श्री विद्याश्रीजी के सम्पर्क में आयी। गुरुणीजी के सम्पर्क में आने से आपके हृदय में वैराग्य के अंकुर फूट पड़े। वैराग्य भावना प्रबल होती गयी और शीघ्र ही परिपक्व भी हो गयी। हरजी में संवत १९४० आषाढ़ शुक्ला ६ के दिन शुभ लग्न में महत्तारिका साध्वीजी श्रीविद्याश्रीजी की शिष्या के रूप में आपको दीक्षाव्रत देकर साध्वीजी श्री प्रेमश्रीजी नाम रखा। दीक्षा ग्रहण के बाद साध्वीजी श्री प्रेमश्रीजी ने अपना चित्त अप्रतिहत गति से निरन्तर धार्मिक अध्ययन में लगाया। आपको सब प्रकार से योग्य समझकर आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. ने झाबुआ में माघ शुक्ला पूर्णिमा के दिन बड़ी दीक्षा प्रदान की। आपने साध्वी समाज को शिक्षा की ओर प्रोत्साहित किया एवं मर्यादापूर्वक शुद्ध क्रियाओं का सम्यक्तया पालन करके दूसरों के लिए आदर्श उपस्थित किया।

संवत् १९६२ मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी को पूज्या महत्तारिका साध्वीजी श्री विद्याश्रीजी का राजगढ़ में देहावसान हो गया। साध्वीजी श्री प्रेमश्रीजी ने गुरुणीजी की आदर्श सेवा की। खाचरोद में आचार्य भगवंत श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. ने संवत् १९६२ माघ शुक्ला त्रयोदशी को साध्वीजी श्री

प्रेमश्रीजी को **प्रवर्तिनी पद** से विभूषित किया।

गुरुणीजी के देहावसान के पश्चात् साध्वी संघ का भार आपने सुविशुद्ध रूप से संभाला। उन्हें मर्यादित रूप से चलाने के लिए पूरी देख-रेख के साथ आपने अपने नाम की यथार्थता को पूर्ण रूप से चरितार्थ किया। आपने मालवा, मारवाड़ एवं गुजरात आदि के विभिन्न स्थानों में चातुर्मास किये, वहाँ जप, तप, उद्यापन, सामायिक, पूजा, प्रभावना आदि धार्मिक क्रियाओं का अच्छा प्रचार किया।

प्रवर्तिनीजी श्री प्रेमश्रीजी ने **वृद्धावस्था एवं शारीरिक अस्वस्थता के कारण सं. १९८८ में बड़नगर में स्थायी निवास कर लिया।** इस समय आपने अपना सारा अधिकार अपनी अन्तेवासिनी **साध्वीजी श्रीरायश्रीजी** को दे दिया और आप स्वयं देवगुरु के ध्यान में में लीन हो गयी। आपने अनशन व्रत धारण करके प्रभु स्मरण करते हुए आश्विन शुक्ला द्वादशी शुक्रवार रात्रि को तीन बजे अपना क्षणभंगुर देह सदा-सदा के लिए त्याग दिया। आप सदैव धर्मध्यान में लीन रहती थी। आपने अपना सम्पूर्ण जीवन धर्म एवं समाज सेवा में ही व्यतीत किया।

कृपा सम्यग्दर्शन की

पुणिया श्रावक की सामायिक श्री वीर परमात्मा के मुख से लगाकर आज दिन तक धर्मी जनों के मुख से प्रशंसात्मक रूप से सुनाई दे रही है **यह कृपा सम्यग्दर्शन की है।**

अविरतिधर श्रेणिक महाराजा तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित कर लेते हैं **यह कृपा सम्यग्दर्शन की है।**

तीर्थंकर परमात्मा श्री महावीर स्वामी की उत्कृष्टी आशातना करने वाले गोशालक को एक बार देवलोक के सुखोपभोग हेतु भेज दिया **यह कृपा सम्यग्दर्शन की है।**

- जयानंद

पूज्य गुरुवर्या श्रीहेतश्रीजी म. की स्मृति ही शेष है

- साध्वी श्रीमुक्तिश्रीजी म.सा.

पूजनीया सद्गुरुवर्या की अंतिम बिदाई को आज छः वर्ष हो गये हैं और सातवां वर्ष चल रहा है। **फाल्गुन शुक्ला द्वादशी** का प्रातः हम लोगों के लिए बहुत ही विषम और अकल्पनीय था। उसी दिन गुरुवर्या चिर समाधि में लीन हुई थी। उस समय का सम्पूर्ण दृश्य आज भी चलचित्र की भांति आँखों के सामने तैर रहा है।

उस समय उनके चेहरे पर पूर्ण शांति थी। अपार करुणा के भण्डार गुरुवर्या ने मानों हम लोगों में संस्कार जाग्रत करने के लिए ही अपनी प्रकृति ऐसी स्वाभाविक और सौम्य बनायी थी।

कृपासागर गुरुवर्या की स्थूल देह का विलय हो गया किन्तु आत्म ज्योति तो सदैव ज्वलंत है। इस सत्य से सभी परिचित हैं कि **जिसने भी जन्म लिया है, उसकी मृत्यु अवश्य है**। किंतु आत्मा अजर अमर है। **भौतिक देह की समाप्ति के पश्चात् व्यक्ति के कार्यों की स्मृति रह जाती है। जिससे वह सदैव अमर रहता है।**

गुरुवर्या गुणों की खान थी। उनके गुणों पर कुछ लिखने की सामर्थ्य मेरी लेखनी में नहीं है। फिर भी हृदय में कुछ भाव उत्पन्न हो रहे हैं। उनको लिपिबद्ध करना है। इसके साथ ही यह प्रश्न भी उपस्थित हो जाता है कि क्या लिखूं और क्या नहीं? जिस समय लिखने के लिए चिंतन होता है तो ऐसा लगता है कि इतना लेखन करना है कि उसे सीमा में बाँधना कठिन है किन्तु जब लिखने के लिए कलम उठाती हूँ तो किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाती हूँ। यह समझ में नहीं आता कि क्या लिखा जाय और क्या नहीं? इसका एकमात्र कारण यह है कि मुझे गुरुवर्या की छाया में सबसे अधिक समय तक रहने का सौभाग्य मिला। सबसे अधिक उपकार भी मुझ पर ही है। आपके अतिरिक्त मुझे जिन गुरुवर्याओं की छत्रछाया में रहने का सौभाग्य मिला उनके नाम हैं - पू. गुरु श्रीमानश्रीजी म., पू. गुरु श्रीभावश्रीजी म., पू. श्रीविनयश्रीजी म., पू. श्रीकमलश्रीजी म., पू. श्री गुलाबश्रीजी म., पू.

श्रीचमनश्रीजी म., पू. श्रीपुण्यश्रीजी म., पू. श्री विमलश्रीजी म., पू. श्रीचेतनश्रीजी म., पू. श्रीचतरश्रीजी म., पू. श्रीभक्तिश्रीजी म. आदि। इन सबका सान्निध्य कुछ समय तक ही रहा। उसके पश्चात् पू. गुरुवर्या श्रीहेतश्रीजी म. का सान्निध्य उनके अंतिम समय तक बना रहा। यह समय अट्ठावन वर्ष का है।

इस संपूर्ण अवधि में केवल आठ चातुर्मास गुरुवर्या के आदेश से अलग किये। उसमें भी तत्रस्थ संघों का अत्याग्रह था। श्री संघ के कार्य में किसी प्रकार की बाधा न हो, इसी कारण आज्ञा शिरोधार्यकर पृथक् चातुर्मास किये।

यहाँ गुरुवर्या के कुछ विशिष्ट गुणों का विवरण देने का प्रयास किया जा रहा है। गुरुवर्या के इन गुणों का आत्मानुभव मैंने स्वयं किया है। इन गुणों से गुरुवर्या की महानता प्रकट होती है।

गुरुवर्या का उपकार :

मिलन के साथ बिछुड़ना, जन्म के साथ मृत्यु निश्चित है। नया पुराना, शत्रुभाव का क्षण भर में मैत्री में परिवर्तन, मित्र का क्षणभर में शत्रु बन जाना, आदि संसार का स्वभाव है। जो सत्य है, शाश्वत सत्य है, वह तो सत्य ही रहता है। अधर्म कभी धर्म नहीं होता, उसी प्रकार एक मौलिक भाव सौजन्य=सृजनता जिसमें होता है, वह उसे त्यागता नहीं है। और यह बहुत ही कम व्यक्तियों में पाया जाता है।

यह गुण पूजनीया गुरुवर्या में था। विषम से विषम परिस्थिति में भी वे अन्दर और बाहर से सम रही। न तो कभी चेहरे के रंग में परिवर्तन हुआ न आत्म भावों में अन्तर आया।

कोई श्रावक-श्राविका हो या साधु-साध्वी। अनेक बार ऐसे प्रसंग उपस्थित हुए कि पूज्यवरा के प्रति कठोर शब्दों का प्रयोग किया गया, किसी अपराध के आरोपण का प्रसंग आया हो। फिर भी उन पर किसी प्रकार का कोई प्रभाव या परिवर्तन देखने में नहीं आया। उन्होंने कभी भी अपने जीवनकाल में न तो अपशब्दों का प्रयोग किया न कभी किसी के प्रति शत्रुभाव रखे। यह तो संसार चक्र है। यहाँ सभी प्रकार के मनुष्य रहते हैं। मित्र हैं, तो शत्रु भी हैं। ऐसे में यदि गुरुवर्या के प्रति कोई द्वेष भाव रखता हो तो कोई भी आश्चर्य नहीं। ऐसे द्वेषभाव रखनेवाले व्यक्ति जब गुरुवर्या के सम्पर्क में आते तो उनका समस्त कालुष्य धुल जाता और वे गुरुवर्या के

प्रति श्रद्धालु बन जाते।

गुरुवर्या स्वयं तो कषायों से मुक्त ही थी, यह उनका हम पर असीम उपकार है कि उन्होंने हमें भी सदैव द्वेष से बचाये रखा। वे सदैव हमें सहनशीलता की अनवरत शिक्षा प्रदान करते रहे। यह तो हमारी स्वयं की ही कमजोरी कही जा सकती है कि हम अपनी कमी का अनुभव नहीं कर पाये। गुरुवर्या के अनंत-अनंत उपकार हम पर हैं।

गुरुवर्या की सेवा भावना :

हमें स्मरण नहीं आता कि इतने दीर्घकाल तक उनकी पावन निश्रा में रहने पर हमने कभी यह देखा हो कि गुरुवर्या किसी से सेवा कार्य ले रही है। **अपना छोटे से छोटा कार्य भी वे स्वयं ही करती।** इसके विपरीत अपनी शिष्याओं और प्रशिष्याओं के थोड़े से दुःख से वे दुःखित हो जाती और जब तक दुःख दूर नहीं हो जाता तब तक उसकी सेवा करती रहती। इस सेवा भावना में उनके हृदय में छोटे बड़े का कोई भेद नहीं था। वे समताभाव में रमण करते हुए सेवा कार्य करती थी। ऐसा अनुभव होता है कि सेवा कार्य में वे अपूर्व आनन्दानुभूति का अनुभव करती थी। वर्षों तक उन्होंने वृद्ध स्थविरों की सेवा की।

स्वाध्याय :

प्रभु भक्ति, सेवा, दर्शनार्थियों से मिलना, चर्चा करना। यह सब नित्य की चर्या थी। इन सब से जैसे ही अवकाश मिलता गुरुवर्या स्वाध्याय करने बैठ जाती। हमने कभी भी उन्हें फालतू बैठे नहीं देखा। स्वाध्याय उनके जीवन का अभिन्न अंग बन गया था।

विनय :

हमने गुरुवर्या में जिस विनयशीलता के दर्शन किये, वैसे आज तक देखने को नहीं मिले। यदि एक पंक्ति में कहूँ तो यह कि **वे विनय की साक्षात् प्रतिमूर्ति थी।** उन्हें देखकर विनय का अर्थ और महत्व समझ में आ जाता था।

कष्ट सहिष्णुता :

यह सर्वविदित है कि उनके पैर में कष्ट था। अपनी रुग्णावस्था में उन्होंने कभी यह अहसास नहीं होने दिया कि उन्हें कितना कष्ट है। उनमें असीम सहिष्णुता के भाव थे। हमने कभी भी उनके चेहरे पर पीड़ा के भाव नहीं देखे और न ही कभी उन्हें कष्ट में कराहते हुए देखा। ऐसी सहिष्णुता

बहुत कम लोगों में देखने को मिलती है। इतना होने पर भी उनकी भक्ति भावना आदि में किसी प्रकार का अंतर नहीं आया था।

वाणी माधुर्य :

गुरुवर्या की अनुपस्थिति हमें आज भी वैसी ही अखरती है कि मानों वे हमें छोड़कर आज ही गयी हो। उनकी वाणी का माधुर्य आज बार-बार याद आता है। उनकी विशेषता यह थी कि वे न तो केवल मौन ही रहती थी न केवल मुखर थी। आवश्यकता से अधिक उन्हें कभी बोलते नहीं पाया। बड़ी ही संयमित भाषा में वे हमें हितकर शिक्षा प्रदान करती रहती थी।

उनकी भाषा में माधुर्य और विनम्रता सदैव टपकती रहती थी। हमने कभी भी कठोरता या कर्कशता नहीं देखी। यदि किसी ने उनके प्रति कठोर शब्दों का प्रयोग भी किया तो वे अपनी वाणी की मृदुता से उसे जीत लिया करती थी। उनकी वाणी में एक प्रकार का जादू था।

गुरुवर्या के अनेकानेक गुणों में से यहाँ कुछ का ही विवरण दिया गया है। उनके सब गुणों का वर्णन करने में इस समय मैं अपने आपको अशक्त पा रही हूँ।

गुरुवर्या की अनुपस्थिति :

आज गुरुवर्या हमारे बीच में नहीं हैं। उनकी एक-एक बात, शिक्षा आज याद आ रही है। हमें याद आ रहा है कि गुरुवर्या ने अपना जीवन सदैव सामुदायिक जीवन में ही व्यतीत किया।

गौचरी के समय खड़े पैर बैठकर सभी को यथावत् गौचरी कराकर बचा हुआ ठण्डा आहार सब मिलाकर निगल जाते। उन्होंने वस्तु का स्वाद कभी नहीं लिया।

वर्षों की साधना अंतिम जीवन में सफल बनी। कष्ट सहिष्णुता के विषय में ऊपर बताया जा चुका है। जब गुरुवर्या को फिट की बीमारी हुई तो एक बार डॉक्टर को लाया गया। उस समय उन्हें होश था। उन्होंने हाथ खींच लिया और सौगन्ध दे दी कि उनकी मूर्च्छावस्था में भी डॉक्टर को बुलवाकर इंजेक्शन आदि मत लगवाना। इसके पश्चात् कभी भी डॉक्टर को नहीं बुलवाया। किन्तु जब कोई अन्य साध्वी बीमार हो जाती थी तो उनके उपचार के लिए सदैव प्रेरणा प्रदान करती रहती। स्वयं उठ नहीं पाते तो भी यही प्रेरणा करते रहते कि उन्हें उठाओ, उन्हें सम्भालो। गौचरी,

पानी चिकित्सा करवाते। पुनः पुनः उसी ओर देखते।

चतुर्दशी का जीवन का अंतिम आयंबिल था। उस दिन मध्याह्न दो बजे पानी वापरकर प्रतिक्रमण की जल्दी करने लगे। उन्होंने कहा, 'आज सभी सूत्र मैं ही बोलूंगी।' देर होते होते चार बज गये। गुरुवर्या को तीन बजे से बुखार हो आया था किन्तु इसका किसी को पता ही नहीं चला। गुरुवर्या सूत्र बोलने लगी किन्तु बोल नहीं पायीं। अतः अन्य साध्वीजी ने सूत्र बोले।

इसके पश्चात् गुरुवर्या का बुखार और श्वास बढ़ता गया। क्रिया-जाप-ध्यान सदैव जागृति के साथ उपयोगपूर्वक करते रहे व सभी को सद्बोध द्वारा सन्तुष्ट करते रहे। अन्ततः फाल्गुन शुक्ला द्वादशी की प्रातः साढ़े आठ बजे समस्त परिवार को रोते-बिलखते, अपनी नश्वर देह को हँसते मुँह त्यागकर चल बसे अनंत की यात्रा में।

जीवन धन्य बना। पर हम रह गयी केवल प्राण विहीन देहधारी निश्चेष्ट। भाग्यहीन के हाथों रत्न कहाँ? पुण्य समाप्त हो गया। निश्रा रहित निराश्रय बनी। शीतलता रहित आग में डूबी। अब उनके प्रिय शब्द कहाँ? अब कहाँ उनकी आत्महितकारी शिक्षा? किस जन्म में गुरुमाता पुनः मिलेगी? अब तो गुरुवर्या की स्मृतियाँ ही शेष रह गयी है।

गुरुवर्या के स्वर्गवास के समय उनके श्रद्धालु भक्तों ने अनेक प्रकार के चढ़ावों के माध्यम से लाभ प्राप्त किया। गुरुवर्या के सांसारिक पक्ष के मामाजी के पुत्र और पुत्रवधू भी आ गये थे। उन्होंने भी बहुत लाभ लिया।

आहोर श्रीसंघ की ओर से इस अवसर पर अष्टाह्निका महोत्सव एवं महिला मण्डल (श्राविका संघ) की ओर से भक्तामर पूजा, गुरुपद पूजा पढ़ाई गयी।

आहोर श्रीसंघ ने बीस वर्षों तक असीम भक्तिपूर्वक गुरुवर्या की सेवा की। ऐसी निःस्वार्थ भाव की भक्ति दुर्लभ ही है।

बारह मास की तिथि पर आचार्य पद महोत्सव सम्पूर्ण होता था। उसीके साथ ही निवाणु अभिषेक की पूजा पढ़ाई गयी।

पू.गुरुवर्या के पुण्ययोग से राजस्थान ही नहीं देश के विभिन्न प्रान्तों में भी स्थान-स्थान पर पूज्याश्रीजी के स्वर्गारोहण निमित्त पूजा, अष्टाह्निका महोत्सव आदि का आयोजन श्रीसंघों की ओर से हुआ। ऐसे आयोजनों का संक्षिप्त/सामान्य विवरण इस प्रकार है -

- *मद्रास में दस पूजा पढ़ाई गयी।*

- *गुंटुर में अष्टाह्निका महोत्सव।*
- *थराद में पूजन;*
- *सम्मेत शिखरजी के यात्री संघ में प.पू.श्रीमद्विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी म. की निश्रा में अष्टाह्निका व आयंबिल।*
- *अलीराजपुर में पाँच पूजन। बेंग्लौर में पूजन।*
- *जोधपुर में आठ पूजन, बागरा में अठारह पूजन।*
- *पालीताणा में पूजन, सीमोगा में पूजन।*
- *विजयवाड़ा में पूजन।*

इसके अतिरिक्त विभिन्न तीर्थ स्थानों पर भक्तों की ओर से आंगी पूजा पढ़ाई गयी। यथा-

- *नाकोड़ाजी में आंगी पूजा। भांडवाजी में आंगी पूजा। सिद्ध गिरिराज, उम्मेदपुर, शंखेश्वरजी, भीलड़ियाजी, भद्रेश्वरजी में आंगी पूजा। कटारिया तीर्थ में आंगी पूजा और बारह मासिक तिथि मनायी गयी। सुथरी तीर्थ में आंगी पूजा, नलिया तीर्थ में आंगी पूजा, कोठारिया तीर्थ में आंगी पूजा, तेरा तीर्थ में आंगी पूजा, जक्खाउ तीर्थ में आंगी पूजा, हस्तिनापुर में आंगी पूजा।*
- *जयपुर में बारह मासिक तिथि पर आंगी पूजा प्रभावना का समारोह आहोर वाले प्यारीबाई मीठालाल कुहाड़वाले की ओर से हुआ।*

अनेक श्रद्धालुओं ने अपने स्थान में पूजा आदि भक्ति का लाभ लिया। यहीं उन सभी का नामोल्लेख कर पाना सम्भव नहीं है।

पूज्याश्री की साहित्य सेवा :

पूज्य गुरुवर्या की हार्दिक ज्ञानभक्ति अपूर्व थी। आपश्री की साहित्य सेवा भी उल्लेखनीय है। गुरुवर्या ने कभी भी अपना समय निरर्थक नहीं जाने दिया। वे सदैव ज्ञान-ध्यान और स्वाध्याय में लीन रहती थीं।

उनकी साधना की स्मृति में सर्वप्रथम 'साधु-प्रतिक्रमण सूत्र' प्रकाशित हुई।

निर्माण कार्य :

बारह मास की तिथि पर पूज्याश्रीजी की प्रतिमाजी बनकर आ गयी थी। चबूतरा एवं छत्री बनकर तैयार हो गयी थी। चरण पादुकाएँ भी बनकर आ गयी थी।

चौथे वर्ष विद्या विहार में श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिष्ठा के समय पू. श्रीजी की प्रतिमाजी को विक्रम संवत २०४३ ज्येष्ठ शुक्ला एकादशी के दिन विराजित किया गया।

आपश्री के उपदेश से विद्याविहार में मंदिर निर्माण की भावना श्रीमती ओटीबाई फूलचन्दजी आहोर की सबल हुई थी।

आहोर गोड़ीजी के मंदिर के अन्तर्गत श्रीमती सुंगीबाई लछमनाजी-सुपुत्र शांतिलालजी मांगीलालजी ने श्री सीमन्धर स्वामी के मंदिर का निर्माणकर प्रतिष्ठा करवाई। उस समय मंदिर के बगीचे के पिछले समाधि स्थान पर छत्री व चरण पादुकाएँ विक्रम संवत् २०४३ ज्येष्ठ शुक्ल ६ को विराजित की गई। इसके साथ ही एक सुंदर प्रतिमूर्ति भी स्थापित की गई।

विशेष :

पूज्य गुरुवर्या के सांसारिक परिवार की ओर से (पिताश्री, चचेरा भाईयों आदि मामाजी और ननंद आदि की ओर से) समय-समय पर चातुर्मास भी करवाये गये। सभी चातुर्मासो में पूजा, प्रभावना, व्याख्यान, तप, ज्ञान-ध्यान आदि में सभी श्रीसंघों की अपूर्व भक्ति रही। आपश्री के सरल-सौम्य व्यवहार और परम पुनित भावना से कभी किसी के हृदय में दुर्भावनां उत्पन्न नहीं हुई। वरन् जो थोड़े बहुत मतभेद होते थे, वे भी स्वयं ही समाप्त हो जाते थे।

पू. गुरुवर्या हमें आशीष प्रदान करें कि हम उनके बताये मार्ग पर चलने का साहस जुटा सके। अपनी आत्मा को उज्ज्वल बना सके। इन्हीं शब्दों के साथ अपनी हार्दिक श्रद्धांजली अर्पित करती हूँ।

वि.सा. श्री मुक्तिश्री ने अपनी पूजनीया गुरुवर्या के जिन गुणों का वर्णन किया है वे सभी और उससे भी विशेष गुणधारिणी स्वयं बनी रही थी।

यही लेख नाम परिवर्तन से शासनदीपिका के गुणगान के वर्णन में अतिशयोक्ति से रहित है।

- संपादक

सत्य मार्गदर्शन

– साध्वीजी भावश्रीजी की अन्तेवासिनी श्रीमुक्तिश्रीजी

राजेन्द्र मुनिपति से चला यह त्रिस्तुतिक नवपंथ है।
यह कह रहे, नहिं जानते जो निगम-आगम ग्रंथ हैं ।।
सर्वज्ञ-अनुमोदित तथा सच्चा सनातन धर्म है ।
जैनागमों को देखिए जिनमें भरा यह मर्म है ।।१।।
यह सत्य है, इसका हुआ था लोप-सा कुछ काल से।
बस चार स्तुति करने लगे हम विघ्न-भय विकराल से।।
फिर 'सूरिवर राजेन्द्र'ने इसका किया परिशोध है ।
'राजेन्द्र मत' कहना इसे, यह तत्त्वहीन विरोध है ।।२।।

यह तर्कसिद्ध वस्तु है कि सत्पुरुष असत्य एवं अप्रमाणिक वस्तु या मार्ग को ग्रहण नहीं करते। वे तो प्रत्येक मार्ग में प्राणीमात्र के कल्याण का भाव सन्निहित हो इस बात को प्रथम देखते हैं। **गुरुदेव प्रभु श्रीमद्विजयराजेन्द्रसूरीश्वरजी ने जब जावरा (मध्य भारत) में क्रियोद्धार कर के सत्साधुत्व को ग्रहण किया था,** उस समय समाज का भावी तो तिमिराच्छादित लगता ही था; वर्तमान भी पाखंडपूर्ण एवं अतिचारप्रिय था। देव और देवियों की मान्यता ने बढ़कर वीतराग भगवान् के महत्व को भी पीछे ढकेलना अपना मुख्य कार्य बना लिया था। गुरुदेव ने इस शैथिल्य को आगमिक और पूर्वाचार्य महर्षिकृत शास्त्रप्रमाणों से दूर करने का निश्चय किया। उन्होंने सोचा कि इस समय समाज जिस मार्ग पर चल रहा है, यह संघ के लिए हानिकर है। इससे समाज को बचाना मेरा परम कर्तव्य है। ऐसा निश्चय कर आपने 'श्रीत्रिस्तुतिक (सामाचारी रूप) सिद्धांत' को पुनरुजीवित किया। इस सिद्धांत के उदय होते ही समाज के भी अज्ञ नेत्र खुल गये। और गुरुवर का प्रभाव तथा उनका यह प्रचारित (उद्धारित) मन्तव्य दिनानुदिन बढ़ने लगा, जिसके फलस्वरूप आज यह 'आर्य सत्य सनातन सिद्धांत' प्रकाशमान है।

यद्यपि इस सनातन सत्य सिद्धांत को पुनः प्रचारित करने में गुरुदेव को अनेकानेक शास्त्रार्थ करने पड़े और शारीरिक परिषहों का सामना करना पड़ा, परन्तु जो जन्मसिद्ध युगप्रभावक धर्मवीर त्यागी हैं और हैं वीतराग के उपासक, वे कदापि हतधैर्य एवं चलित नहीं होते। आपके सन्मुख जो भी

समस्याएँ आयीं आपने उनका ऐसा निरसन किया कि प्रतिक्रियावादियों की प्रतिक्रियाएँ सदा शिथिल और विफल ही रहीं। प्रतिक्रियावादियों को आपका कहना यही था कि हम जैनधर्मावलम्बियों का प्रत्येक अनुष्ठान अध्यात्मलक्षी होता है। जैनदर्शन हम को संसार के सावद्य-पापजन्य मार्गों से अलगकर निवृत्ति की ओर ही ले जाता है। वास्तव में निवृत्तिप्रधान कार्य ही हम को कर्म से दूरकर, शाश्वत और अनन्त सुख (मोक्ष) की ओर अग्रसर करता है। भगवान् श्री तीर्थंकर वीतराग द्वारा प्रणीत तत्त्वार्थ पर वास्तविक श्रद्धा होने को 'सम्यग्दर्शन' कहते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की वास्तविक आराधना ही मोक्ष का सच्चा मार्ग है। एक ओर तो हम 'करेमि भन्ते! सामाइयं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि से समस्त सावद्य योगों का त्यागकर पापों के आलोचन में प्रवृत्त होते हुए संसार के प्राणिमात्र से वैरविरोध त्यागकर मैत्रीभाव में रमण करते हैं, उसी क्रिया के अन्दर **अविरति भोगासक्त देवि-देवताओं की स्तुति करना कहाँ तक उचित है?**

हमें आत्मकल्याण करना है तो इस प्रकार की मिथ्या क्रियाओं से हमको शीघ्र दूर होना पड़ेगा। शास्त्रकारों ने जिस मार्ग को आत्महितकर बतलाया है, उसे ही पालन करना हमारा प्रथम कर्तव्य है। जो बात शास्त्रसम्मत हो, न्याययुक्त हो और पूर्वाचार्य समर्थित एवं समाचारित हो उसे ही हमें पवित्र बुद्धि और ममत्वरहित होकर ग्रहण करना चाहिए। श्रीदशवैकालिक सूत्र में कहा है कि-

धम्मो मङ्गलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ।।

अहिंसा, संयम और तपरूपी जिनेश्वर-प्रणीत धर्म सभी मंगलों में उत्कृष्ट मंगल है। जिस व्यक्ति का मन निरंजन धर्म में लगा रहता है, उसको देवेन्द्रादि चारों निकाय के देवता भी वंदन करते हैं।

आवश्यकसूत्र की निर्युक्ति में भी पूज्यपाद श्रीश्रीभद्रबाहुस्वामी भी फरमाते हैं कि-

असंजयं न वंदिज्जा, मायरं पियरं सुअं ।
सेणावई पसत्थारं, रायाणो देवयाणि य ।।

बस, गुरुदेव का समाज को यही कहना था।

अब यहाँ मैं पाठकों को सप्रमाण रीति से बतला देना चाहती हूँ कि वास्तव में श्री राजेन्द्रसूरिजी महाराज ने कोई भी नूतन पंथ या मत नहीं चलाया; किन्तु वीतराग के सत्य पथ का ही भान कराया। आशा है जो लोग

त्रिस्तुतिक मत को गुरुदेव द्वारा संस्थापित कहते-कहाते और लिखते-लिखाते हैं; वे निम्नांकित प्रमाण-पाठों को देखें और सोच-समझकर स्वयं निर्णय करने की उदारता दिखावें।

ये कुछ सनातन त्रिस्तुतिक सिद्धांत समर्थक शास्त्रपाठ हैं, जिनसे यह आर्य सनातन सत्य सिद्धांत शास्त्र और पूर्वाचार्य सम्मत है भली प्रकार सिद्ध होता है।

(१) चतुर्दशशतग्रन्थनिर्माता श्रीयाकिनी महत्तरासूनु श्रीमद् हरिभद्राचार्य-रचित 'पंचाशक' ग्रन्थ पर नवांगसूत्रवृत्तिकारश्रीमदभयदेवसूरिकृत टीका में तृतीय पंचाशक की टीका में लिखा है कि-

''सम्पूर्णा-परिपूर्णा सा च प्रसिद्धदण्डकैः पञ्चभिः, स्तुतित्रयेण प्रणिधानपाठेन च भवति, चतुर्थस्तुतिकिलोर्वाचीनेति। किमित्याह उत्कृष्यत इत्युत्कर्षा उत्कृष्टा। इदं च-व्याख्यानमेके ''तिण्णिं वा कड्ढइ जाव थुइयो तिसि लोगिया। ताव तत्थ अणुणायं, कारणेण परेण वि'' इत्येतां कल्पभाष्यगाथां, 'पणिहाण मुत्तसुत्तिए' इति वचनमाश्रित्य कुर्वन्ति।''

(२) ''व्यवहारभाष्ये स्तुतित्रयस्य कथनात् चतुर्थस्तुतिरर्वाचीना इति गूढाभिसन्धिः?, किं च नायं गूढाभिसन्धिः किन्तु स्तुतित्रयमेव प्राचीनं प्रकटमेव भाष्ये प्रतीयते। कथमिति? चेद् द्वितीयभेदव्याख्यानावसरे 'निस्सकड़' इति भाष्यगाथायां 'चेइये सव्वेहिं थुइ तिण्णि' इति स्तुतित्रयस्यैव ग्रहणात्, एवं भाष्यद्वयपर्यालोचनया स्तुतित्रयस्यैव प्राचीनत्वम्, तुरीयस्तुतेरर्वाचीनत्वमिति।''

- श्रीपञ्चाशक टीप्पन

(३) ''तथाहि श्रीकल्पभाष्ये 'निस्सकड़मनिस्सकड़े' इत्यादि गच्छ-प्रतिबद्धेऽनिश्रा-कृते च तद्विपरीते चैत्ये सर्वत्र तिस्रः स्तुतयो दीयन्तेऽत्र प्रति चैत्यं स्तुतित्रये दीयमाने वेलाया अतिक्रमो भवति भूयांसि वा चैत्यानि ततो वेलां चैत्यानि वा ज्ञात्वा प्रतिचैत्यमेकैकापि स्तुतिर्दातव्येति।''

- महामहोपाध्याश्री यशोविजयजी कृत प्रतिमाशतक टीका

(४) ''इरिया तस्सुत्तरीय, अन्नत्थुस्सग्ग लोगस्स ।
खमासमणं च कहणं, धरणीयल जाणु दाहिणयं ।।

१. कितने ही लोग 'किल' शब्द का निश्चयार्थवाची अर्थ नहीं मानते। पूर्वाचार्यों से निर्मित जिन शास्त्रों में 'किल' का अर्थ निश्चय, सत्य, आप्तोपदेश लिखा है उनके नाम ये हैं-स्याद्वादमंजरी की २६वीं कारिका की टीका। द्रव्यानुयोगतर्कणा। दशवैकालिकसूत्र बृहद्वृत्ति प्रथमाध्ययन टीका। 'किलेति निश्चितम्' वीर भक्तामर काव्य में यह अर्थ किया है। यह काव्य 'काव्यसंग्रह' (प्र.भा.) के पृष्ठ १ से ९२ तक मुद्रित है। मुद्रक श्री आगमोदय समिति है।

ठाविऊण सक्कत्थयंतो अरिहंतचेइयवंदणवत्ति ।
अन्नत्थय उस्सग्गो, अट्ठुसासजहण्णं कुणई ।।
पारेइ णमुक्कारं, थुई भणइ जाव उज्जोअं ।
सव्वलोए अरिहंत-चेइयाणं वंदण अन्नत्थं ।।
उस्सग्ग पुव्वविहिणा ठावइ पूरइ तओ पच्छा ।
थुई पुक्खरदीव, सुअस्स भगवओ अन्नत्थं ।।
उस्सग्गं पारइ तह, थुई सिद्धाणं तओ ठिच्चा ।
सक्कत्थंयं जावंति, इच्छामि य जावंत गाहा ।।
णमोऽरहथुत्तं च (वा) जाव पणिहाणकए पुण्णं ।।"

– श्री प्रद्युम्नसूरिकृत समाचारीप्रकरण

श्री बुद्धिसागरसूरिजी स्वरचित 'गच्छमत प्रबंध अने संघ प्रगति' नामक गुजराती पुस्तक के पृष्ठ १६९ पर लिखते हैं –

"विद्याधर गच्छना श्रीमान् हरिभद्रसूरि थया. ते जाते ब्राह्मण हता. तेणे जैन दीक्षा ग्रहण करी, याकिनी साध्वीना धर्मपुत्र कहेवाता हता. तेमणे १४४४ ग्रंथो बनाव्या. श्री वीर निर्वाण पछी १०५५ वर्षे स्वर्गे गया. त्यार पछी चतुःस्तुतिक मत चाल्यो."

श्री विजयवल्लभसूरिजी के आज्ञावर्ती श्री कस्तूरसूरिजी निजलिखित 'ज्ञानप्रदीप' में लिखते हैं कि–

"देहमां आत्मबुद्धि धारण करी पोताना स्वरूपने भूली गयेला जडासक्त जीवो जाणता नथी के देवगतिमां उत्पन्न थयेला देव, मनुष्यना शुभाशुभना उदय सिवाय कंई पण शुभाशुभ करी शकता नथी. मनुष्य पोताना शुभना उदयथी अनुकूळ सुख मेळवी साधनसंपन्न बनी शके छे. बाकी देवताओ कंई पण आपी शकता नथी." *(पृष्ठ १६७)*

इन प्राचीनार्वाचीन प्रमाण पाठों से भली प्रकार यह सिद्ध हो जाता है कि यह आर्य सनातन सत्य त्रिस्तुतिक सिद्धान्त शास्त्रसंमत और पूर्वाचार्य समाचरित है; नहीं कि शास्त्र और पूर्वाचार्यों से विरुद्ध एवं नवनूतन।

(श्री राजेन्द्रसूरिजी स्मारक ग्रंथ)

[इस विषय में एवं अन्य भी दादा गुरुदेव की सामाचारी के विषय में वर्तमान में हो रहे आक्षेपों का सटीक प्रत्युत्तर हेतु अस्मद् लिखित सत्य की खोज भाग दूसरा अवश्य पढ़े। – संपादक]

थराद अने पू. गुरुदेव

– साध्वी श्रीमुक्तिश्रीजी म.सा.

संवत २००४नी साल अने असाढ सुदी चौदशनो दिवस थराद (थीरपुर)ना माटे अति आनंदनो दिवस हतो, अति उल्लासनो दिवस हतो.

एवुं ते शुं हतुं ए दिवसे?

पू. गुरुदेव श्रीमद्विजय यतीन्द्रसूरिश्वरजी महाराज चातुर्मास निमित्ते थरादमां प्रवेश करता हता ए दिवसे!

थरादना द्वार समी हनुमाननी देरी अने एथी पण बहार लगभग वरखडी के ज्यां श्री पार्श्वनाथ प्रभुनां पगलां छे (अने पासे ज पू. तपस्वी मुनिराज श्री हर्षविजयजी महाराजनो स्वर्गवास थतां एमनो अग्नि संस्कार करी एक नानुं सरखुं स्मारक उभुं कर्युं छे) [हमणां वरखडीनो जिर्णोद्धार विशाल रूपथी थई रह्यो छे.] त्यांथी मांडी अने छेक धर्मशाळा सुधीमां आखो रस्तो अवनवां तोरणोथी शणगारवामां आव्यो हतो. दिवालो तेना पर लखेल सोनेरी सूचनोथी शोभती हती. भूमि गईकाले ज थयेल समयसरनी वर्षाना कारणे ठंडक अर्पी रही हती.

आगळ बेन्ड अने पाछळ 'वंदे वीरम्' 'जैन शासननो जय जयकार' करती अपार मानव मेदनी पू. गुरुदेवनी सामे सामैयु लई जई रही हती. मलुपुर जे थरादथी बे माईल ज दूर छे त्यां पू. गुरुदेव आगळना दिवसे बीराजता हता. त्यांथी विहार-थराद तरफ थई चूक्यो हतो साथे हतो शिष्य समुदाय अने थरादथी दर्शन माटे अधीरां बनेलां अगाउथी अहीं आवी पू. गुरुदेवश्रीनां वरसो पछी दर्शन करी तृप्त थयेल थराद अने आजुबाजुनां गामोनां अनेक नरनारी. आ रीते भव्य धामधूम पूर्वक प्रवेश कर्यो हतो पू. गुरुदेवे थरादमां.

अने प्रवेश कर्या बाद?

पछी तो दररोज वहेवा मांडी एमनी उपदेश धारा! परिणाम शुं आव्युं ए उपदेशनुं पछी?

पंदरमा सैका लगभगमां थरादनी भागोळेथी नीकळेल श्री महावीर

स्वामीनी अतिभव्य प्रतिमाजी जे आज सुधी परोणा दाखल बीराजमान हतां तेनी प्रतिष्ठा एक भव्य जिनालय बंधावी करावावानुं नक्की कर्युं थराद श्रीसंघे.

अने संघनुं काम एटले पूछवुं ज शुं? संघना कामनो वेग एटले? जाणे ग्रान्ड ट्रन्क एक्षप्रेस, गण्या दिवसोमां तो जिनालय बनाववा माटे जंगी मोटा पथ्थर आवी पहोंच्या.

अने पछी?

पछी तो आवी पहोंच्या शिल्पकारो अने थवा मांडयुं कोतरकाम अने जोतजोतामां तो एक जिनालय तैयार थई चुक्युं. श्री ऋषभदेव भगवाननुं दहेरासर तो भव्य हतुं ज अने पडखे ज आ एक अति भव्य जिनालय बनावी बंने जिनालयो फरतो एक मोटो कोट थतां बंने जिनालय एक थतां भव्य अने अतिभव्य भेगा थतां... शुं लखवुं ए ज सुजतुं नथी... एवी सुंदरता ए जिनालयनी लागवा मांडी.

अने महा सुद ६ संवत २००८ नो दीवस हतो. आ नूतन जिनालयमां श्री महावीर स्वामी, श्री आदीनाथ भगवान, श्री शांतिनाथ भगवान अने बीजी घणी प्रतिमाजीओनी प्रतिष्ठा करवानो. सं. २००४ अने सं. २००५नां बे चातुर्मासमां थराद श्रीसंघमां एक ज्योत प्रगटावी बे वरस मारवाड़ विहार करी ज्यारे पू. गुरुदेवे थरादमां धामधूमपूर्वक प्रवेश कर्यो त्यारे एमणे प्रगटावेली ज्योत जगमगती हती-नूतन जिनालय तैयार थई चूकयुं हतुं.

पछी तो थवा मांडी तडामार तैयारीओ प्रतिष्ठानी, नूतन जिनालयने अवनवां तोरणो अने ध्वजा पताकाओथी शणगारवामां आव्युं. बहार एक भव्य मंडप बनाववामां आव्यो. मंडपमां एक मोटी वेदीका उपर नूतन प्रतिमाओने बीराजमान करवामां आवी. अने आसपास शत्रुंजय, अष्टापदजी विगेरे तीर्थोना स्वरूप रूपे गीरीमाळाओनी रचना तेमज अन्य कथात्मक चित्रोना पडदाथी मंडपने शणगारवामां आव्यो अने आ मंडपमां प्रतिष्ठानुं कार्य शरू थयुं.

प्रतिष्ठाना प्रसंगने अनुरूप थरादमां एक बेन्ड मंडळनी स्थापना पू. गुरुदेवश्रीना उपदेशथी करवामां आवी जेथी बहार गामथी बेन्ड मंडळ बोलावी फालतु खर्च न थाय. आ मंडळनुं नाम राखवामां आव्युं श्री यतीन्द्र जैन बेन्ड मंडळ जे आजे पण सार्वजनिक कार्योमां पोतानो फाळो आपे छे.

प्रतिष्ठानो दिवस आठ आठ दिवसना महान उत्सव पछी आवी पहोंच्यो

ते दिवसे आखुं थराद वहेली सवारमां उठी प्रतिष्ठा महोत्सव माटे उभा करायेला मंडपमां आववा मांडयुं.

थराद आजे उभराई गयुं हतुं वस्ती डबलथी पण वधी गई हती. आजुबाजुनां गामोमांथी तेमज मारवाड़-राजस्थान अने माळवामांथी हजारो भावुको आ प्रतिष्ठा महोत्सव पर आवी पहोंच्या हता. कारण आ प्रसंगे आववाथी एक काम अने दो काज जेवुं हतुं. प्रतिष्ठा महोत्सव एक अलौकिक प्राचीन प्रतिमाजीनो हतो जेना दर्शनथी पावन थवानुं हतुं एक कार्य, बीजुं हतुं पू. गुरुदेव श्रीमद्विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी अने एमना विद्वान शिष्य समुदाय तेमज थरादमां बीराजमान साध्वीजी महाराजोना अपूर्व दर्शननो लाभ मळवानुं हतुं. आवा प्रसंगे आववानुं कोण भूले?

आम प्रतिष्ठा महोत्सव निर्विघ्ने संपूर्ण थयो साथे साथे बीजां जिनालयो श्री पार्श्वनाथजी जिनालय सोनारा शेरी, श्री विमळनाथ जिनालय आंबली शेरी, श्री सुपार्श्वनाथ जिनालय आंबली शेरी अने श्री झमकार देवीनुं मंदिर (पांचसोवोरा कुटुंबनी कुळदेवी) देसाई शेरी विगेरे जग्याए पण आज समये ध्वज दंड तेम गुरुमूर्ति आदिनी प्रतिष्ठाओ पू. गुरुदेवश्रीना उपदेशथी थई.

(भूकंपथी देरासरने नुकशान थवाथी ए बन्ने देरासरनो भव्यातिभव्य नव निर्माण थई रह्यो छे.)

आज समये 'श्री जैन प्रतिमा लेख संग्रह' जे पू. गुरुदेवे संवत २००४मां संग्रहित करेल अने पू. गुरुदेवश्रीनी ए समये थयेल गंभीर मांदगीना कारणे श्री दोलतसिंह लोढाने आ कार्य सोंपायेल तेनुं प्रकाशन पण पू. गुरुदेवश्रीना उपदेशथी थयुं. आ पुस्तक इतिहास अने पुरातत्वना लेखको माटे घणुं महत्वनुं छे अने तेमां पू. गुरुदेवे श्री जीरावली तीर्थथी ते थराद सुधी विहार दरम्यान संग्रहित करेल, गामोनी प्राचीन प्रतिमाओना लेखो अक्षरसः प्रगट थयेल छे.

आम, पू. गुरुदेवश्रीनो थराद पर थयेल उपकार ए थराद अने पू. गुरुदेवना संबंधनो पूरावो छे अने रहेशे.

अने हजु पण पू. गुरुदेव थराद माटे केटकेटलुं करशे एनो अंदाज अमदावादमां निर्माण थता श्री राजेन्द्र सूरि जैन ज्ञान मंदिर परथी आवी शकशे जे पू. गुरुदेवश्रीना उपदेशथी कार्यनी शरूआत थई छे.

आचार्यश्री का यात्रा-साहित्य : एक अनुशीलन

– प.पू. महत्तरिका गुरुणीजी भावश्रीजी की शिष्या
गच्छशिरोमणि शासनदीपिकाप्रवर्तिनी
गुरुणीजी श्रीमुक्तिश्रीजी

इतिहास निर्माण के साधनों में यात्रा-साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हमारे देश भारतवर्ष में सदीयों से विदेशी यात्री आते रहे हैं। इन विदेशी यात्रियों ने तत्कालीन भारतवर्ष के विषय में जो कुछ लिखा आज वह भारतीय इतिहास की अमूल्य धरोहर है। विदेशी यात्रियों की भांति कुछ भारतीय यात्रियों ने भी अपने यात्रा प्रसंग लिखे हैं। यद्यपि इस प्रकार के यात्रा प्रसंग बहुत कम ही लिखे गये हैं, तथापि ये हमें महत्त्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध कराते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि यात्रा प्रसंग पुरातत्त्व की भांति ही इतिहास की प्रामाणिक ठोस सामग्री उपलब्ध कराते हैं। इसका कारण यह है कि यात्री जैसा देखता है, अनुभव करता है, उसके सामने जैसा करता है, वह ठीक वैसा ही अपने यात्रा प्रसंगों के विवरण में लिपिबद्ध करता है। इसमें उसे कल्पना की उड़ान भरने की आवश्यकता नहीं रहती है।

विश्वपूज्य प्रातः स्मरणीय श्रीमज्जैनाचार्य गुरुदेव श्रीमद्विजयराजेन्द्र-सूरीश्वरजी म.सा. के सुशिष्यरत्न आचार्य प्रवर श्रीमद्विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. एक उद्भट विद्वान थे। वे जैन धर्म दर्शन के ही नहीं, अन्य अनेक विषयों के भी मान्य विद्वान थे। उन्होंने अनेक विषयों का तलस्पर्शी अध्ययन किया था। उनके द्वारा लिखित विविध विषयक लगभग साठ-पैंसठ पुस्तकें हैं। यह सर्वविदित है कि जैन साधु पाद-विहारी होते हैं। उन्हें जहाँ भी जाना होता है, तो वे पैदल ही जाते हैं। पदयात्रा में मार्गवर्ती प्रत्येक गाँव/नगर से सम्पर्क होता है। विवेकसंपन्न व्यक्ति ऐसे गाँव/नगरों की ऐतिहासिकता, धार्मिकता अथवा किसी अन्य विशेषता को लिपिबद्ध करना नहीं भूलता, फिर भले ही वह उसका उपयोग लेखन में कहीं करे अथवा नहीं करे। जो व्यक्ति/संत यात्रा साहित्य के महत्त्व को समझता है। वह उसे लिपिबद्धकर

पुस्तक का स्वरूप भी प्रदान कर देता है। आचार्य श्रीमद्विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे। इसीलिए उन्होंने यात्रा-साहित्य विषयक निम्नांकित पुस्तकें लिखकर प्रकाशित करवायीं-

(१) यतीन्द्र विहार-दिग्दर्शन भाग १-२-३-४

(२) मेरी नेमाड़ यात्रा और (३) मेरी गोड़वाड़ यात्रा

अब हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि आपके द्वारा लिखित यह यात्रा-साहित्य किस प्रकार उपयोगी होकर मार्गदर्शन प्रदान करता है।

(१) श्री यतीन्द्र विहार-दिग्दर्शन भाग - १ :

इस पुस्तक की प्रस्तावना में लिखा है-

''आज इतिहास के अतिगहन विषय को परिस्फुट करके दिखलाने वाली, पूर्वकालीन जाहोजलाली को प्रत्यक्ष बतानेवाली और आदर्श आत्माओं के कृतकार्यों का स्मरण कराके आश्चर्यान्वित करनेवाली तीर्थ मालाएँ, ताम्रपत्रों के लेख, प्रशस्तिलेख और दान-पत्र उपलब्ध हैं, वे अप्रतिबद्ध विहार के वास्तविक रहस्य को ही प्रकट कर रहे हैं।

जिन अश्रुतपूर्व बातों का हमें पता तक नहीं था, वे आज हमें हस्तामलकवत् दिखायी देती हैं और हमारे पूर्वजों की आर्थिक शक्ति, धार्मिक शक्ति और आत्मिक शक्ति का भान कराके आश्चर्यनिमग्न कराती हैं। इतना ही नहीं, वे हमारी हार्दिक भावनाओं में उत्तेजना शक्ति प्रकट करके वैसा ही बनने को उत्साहित करती हैं।

सोचो कि यह सब प्रभाव किसका है। कहना ही पड़ेगा कि क्षेत्रों का, उपाश्रयों का, श्रावकों का और श्राविकाओं का, प्रेम रखने वाले परोपकारी आत्मदर्शी मुनि, सन्यासी, उपाध्याय और आचार्यों के अप्रतिबद्ध विहारों का ही प्रताप है। अगर उन्होंने उपकारदृष्टि को लक्ष्य में रखकर और प्रतिकूल या अनुकूल अनेक उपसर्गों को सहकर प्रतिदेश या प्रतिनगरों में विहार न किया होता, तो हमारे पूर्वजों, हमारे प्रभावक तीर्थों और अद्वितीय ज्ञान-भण्डारों का गहनातिगहन इतिहास आकाश कुसुमवत् ही बन जाता।''

उपर्युक्त कथ्य में बहुत ही सारपूर्ण बातें कही गई हैं। इस प्रथम भाग में नवम्बर ७ सन् १९२५ के दिन कुक्षी (म.प्र.) से काठियावाड़, गुजरात और मारवाड़ तक हुए लम्बे विहार के दरम्यान आये हुए गाँवों और गुड़ा

बालोतरा (राजस्थान) से २२ नवम्बर सन् १९२७ के दिन हुए लम्बे विहार के गाँवों की संक्षिप्त नोट इसमें दर्ज की गयी है। गाँवों के नाम, उनमें जैनों के घर आदि की जानकारी दी गयी है, जिससे विहारकाल में साधु-साध्वियों को सुविधा हो। इस प्रकार के गाँवों की सूची में एक गाँव से दूसरे गाँव के मध्य की दूरी भी दे रखी है। इसमें गाँव, नगरों की संक्षिप्त जानकारी और तत्रस्थ स्थित जैन मंदिरों का विवरण दिया गया है। जहाँ शिलालेख, प्रतिमालेख, प्रशस्तिलेख हैं, उसका उल्लेख करते हुए सम्बन्धित लेख भी दिया गया है। ये लेख इतिहास की अमूल्य धरोहर हैं। जहाँ तक प्रतिमा लेखों का प्रश्न है, **प्रक्षालन के कारण अनेक प्रतिमालेख घिस जाते हैं** और **इस कारण वे अपठनीय हो जाते हैं।** इस प्रकार संग्रह में लिपिबद्ध कर लेने से वे अमूल्य हो जाते हैं। अपने विहार दिग्दर्शन के प्रथम भाग में आचार्यश्री ने पालीताणा का विस्तार से वर्णन किया है। उस समय पालीताणा कस्बे में भीतर और बाहर छोटी-बड़ी बत्तीस जैन धर्मशालाएँ थीं। वर्तमान समय में तो काफी परिवर्तन हो चुका है। पवित्र तीर्थ श्री शत्रुंजय का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस विवरण में देशी और विदेशी विद्वानों के तथ्य भी उद्धृत किये गये हैं। यह विवरण आज भी उपयोगी है। पुस्तक में तीन परिशिष्ट भी दिये गये हैं। इनमें भी गांवों और जैन तीर्थों की जानकारी है। समग्र रूप से पुस्तक जहां पाद-विहारी जैन साधु-साध्वियों के लिए उपयोगी है, वहीं इतिहास के विद्यार्थियों और शोधार्थियों के लिए भी उपयोगी है।

(२) श्री यतीन्द्र विहार - दिग्दर्शन भाग - २ :

इस पुस्तक का प्रकाशन सन् १९३१ में हुआ था। इसमें फाल्गुन शुक्ला २ वि.सं. १९८५ से आषाढ़ शुक्ला ६ सं. १९८६ तक तथा मगसर कृष्ण ५, वि.सं. १९८६ से ज्येष्ठ शुक्ला ५ वि.सं. १९८७ की अवधि में हुए विहार का विवरण है। इस भाग में चार परिशिष्ट भी हैं। परिशिष्ट नं. १ में संस्कृत प्रशस्ति लेख का हिंदी अनुवाद है। परिशिष्ट नं. २ में संडेरथगच्छीय श्री यशोभद्रसूरिजी का संक्षिप्त जीवनचरित्र है, जो माननीय और चमत्कारपूर्ण है। परिशिष्ट नं. ३ में मारवाड़ देशस्थ गुड़ाबालोतरा से सेठ जीवाजी लखाजी के निकाले हुए जैसलमेर यात्रा संघ का वर्णन है और परिशिष्ट नं. ४ में आचार्यश्री के वर्षावास काल में विभिन्न गाँवों में भावुकों की ओर से आये हुए विज्ञप्ति-पत्र हैं।

प्रथम भाग की भाँति इस भाग में भी गाँव तथा नगरों का विवरण, जैनमतावलम्बियों की संख्या, जैनमंदिरों तथा उपाश्रयों की जानकारी दी गयी है। मार्गवर्ती जैन तीर्थों का इतिहास भी दिया गया है। मूर्तिलेख, शिलालेख, प्रशस्तिलेख भी दिये गये हैं। जो इतिहास निर्माण के लिए काफी उपयोगी और महत्त्वपूर्ण हैं। पृष्ठ १२६ पर मंत्री सायर का वंशवृक्ष भी दे रखा है। मंत्री सायर ने आदिनाथ प्रतिमा का दो बार उद्धार करवाया था। इसमें ऐसी ही और भी महत्त्वपूर्ण सामग्री संग्रहीत है। वर्तमान युग में भी यह प्रासंगिक है।

(३) श्री यतीन्द्र विहार - दिग्दर्शन भाग - ३ :

इसका प्रकाशन सन् १९३५ में हुआ। अपने प्राथमिक वक्तव्य में आपने लिखा-

'भूमंडल का अवलोकन करने से प्रचुर (बहुत) लक्ष्मी मिलती है, विद्वानों के साथ परिचय होता है। नई-नई सुन्दर विद्याएँ प्राप्त होती हैं। नाना प्रकार की भाषा, वेश और लिपियों का ज्ञान होता है। कुन्द पुष्प के समान उज्ज्वल यश मिलता है, मन की दृढ़ता होती है और सत्पुरुषों का सम्मान करने से निजगुणों पर विश्वास जमता है। संसार में ऐसा कौन-सा गुण है, जो देशाटन से विकास प्राप्त न हो।'

आपने आगे भी इस सम्बन्ध में लिखा है और पादविहार करने के लाभ बताये हैं। प्रस्तुत तीसरे भाग के सम्बन्ध में आपने लिखा है-

'प्रस्तुत श्री यतीन्द्र विहार दिग्दर्शन का यह तृतीय भाग भी अप्रतिबद्ध लम्बी मुसाफिरी (पादविहार) का द्योतक जानना चाहिए। इसमें हमारे विशाल विहार क्षेत्र में आये हुए रास्ते के गाँव, उनमें श्वेताम्बर जैन गृहों की संख्या, जिनालय, धर्मशाला, उपाश्रय और उनके प्रशस्ति लेख आदि प्राचीन अर्वाचीन ऐतिहासिक और भौगोलिक सामग्री आलेखित है, जो इतिहास-लेखकों के लिए उपयोगी और पाद-विहार करनेवाले जैन साधु साध्वियों के लिए मार्गदर्शक है। इसके परिशिष्ट में संस्कृतमय प्रशस्ति लेखों का हिन्दी अनुवाद भी दर्ज है, जिससे प्रशस्ति लेखों का भाव निःसंदेह समझ में आ सकता है।'

इस तृतीय भाग में पालीताणा से भद्रेश्वर तीर्थ के लिए लघु संघ के प्रस्थान से विवरण दिया गया है। मार्गवर्ती गाँवों का इतिहास देते हुए वहाँ

का विवरण है, साथ ही वहाँ उज्ज्वल विभिन्न लेख भी दिये गये हैं। वरमाण गाँव के लेख देखने से ज्ञात होता है कि ये लेख सं. १०१६, १२४२, १३१५, १३४२, १३५१, १३५६ के हैं। लेख जैन इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। दाँतीवाड़ा में सं. १२२६ का लेख है। इस लेख से ज्ञात होता है कि मूलनायक की अंजन शलाका सं. १२२६ में तपागच्छ-नायक श्री विजयसोमसूरिजी के हाथ से राउल गजसिंह समय में हुई है।

आगे पालनपुर के सम्बन्ध में भी विस्तार से लिखा है। इसी प्रकार सिद्धपुर, महेसाणा, जैन तीर्थ भोयणी, लींबड़ी आदि के सम्बन्ध में भी लिखा है। पालीताणा तीर्थ का विवरण काफी विस्तार एवं ऐतिहासिक दृष्टि से दिया गया है, जो आज के लेखकों के लिए सन्दर्भ का काम दे सकता है। इस यात्रा के अंत में सियाणा से पालीताणा तक मार्ग में आनेवाले गाँवों और उनके मध्य की दूरी जैन घर, देरासर, उपाश्रय, धर्मशाला आदि के साथ उनके मुकाम की तिथियाँ भी दी गयी हैं।

इसके आगे श्री कच्छ भद्रेश्वर यात्रा लघु संघ का विवरण है। प्रारम्भ में तीर्थयात्रा का फल बताया गया है। निर्धारित मुहूर्त के अनुसार सिद्ध क्षेत्र पालीताणा से संघ का प्रयाण हुआ। मार्गवर्ती अपने विभिन्न लक्ष्यों तक पहुँचा। साथ में मार्गवर्ती गाँवों की सूची दी गयी है, जिसमें उपर्युक्तानुसार समस्त जानकारी दी गयी है।[1]

इस भाग में सहसावन (गिरनार) का इतिहास विस्तार से दिया गया है। जूनागढ़, गोंडल, राजकोट, मोरबी, अंजार, भद्रेश्वर (वसइ) का विवरण भी काफी दिया गया है। आगे कुछ और भी ग्राम, नगरों का विवरण है, जो उपयोगी है। अंत में परिशिष्ट के साथ स्तवन आदि दिये गये हैं। इनसे पुस्तक की उपयोगिता और अधिक बढ़ गयी है। प्रस्तुत भाग भी वर्तमान समय में उपयोगी है।

---

1 भाग ३ पृ. १०६-१०७ पर कच्छ प्रांत के विहार के वर्णन में लिखा है कि 'कच्छदेशीय जैन जनता में यह भी रिवाज सर्वत्र देखा गया कि - साधु चाहे ६ या ७ कोश का लंबा विहार करके भर दुपहरी में तृषा या क्षुधाऽऽकुल आया हो और कम्मर भी न खोल चुका हो उसके पहले श्रावकों के तरफ से पूछा जाता है कि-महाराज! व्याख्यान अभी वांचोगे या बाद में? यदि साधुजी ने व्याख्यान वांच दिया, या संध्या की वांचने की हामी भर ली तब तो उनकी सेवा-भक्ति अच्छी होगी, अन्यथा नहीं।' इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय की कच्छी प्रजा में धर्म श्रवण की जिज्ञासा कितनी होगी?

(४) श्री यतीन्द्र विहार - दिग्दर्शन भाग - ४ :

इस भाग का प्रकाशन सन् १९३७ में हुआ। इस भाग के हार्दिक संदेश में आचार्यश्री ने लिखा है-

'इसका संकलन ऐतिहासिक और भौगोलिक दृष्टि से हुआ है। इससे इतिहासज्ञों को इतिहास की सामग्री मिलेगी। और पैदल भ्रमण करनेवालों को प्रति ग्राम नगरों का रास्ता मिलेगा।'

'प्रस्तुत ग्रंथ का यह चौथा भाग है, जिसमें पालीताणा से अहमदाबाद, अहमदाबाद से सेरीसा, पानसर, मणासा, बीजापुर, ईडर, पोशीना, केशरियाजी और केशरियाजी से नागफणी, डूँगरपुर, आशापुर, बड़ौदा, बांसवाड़ा, बाजना, खवासा, राजगढ़, रतलाम, खाचरौद, खाचरौद से बड़नगर, कड़ौद, राजगढ़, अमीझरा, धार, मण्डपाचल मनावर, तालनपुर, लखमणी, आलीराजपुर, घोड़ा जोबट, बाग, पांडव गुफा और कुक्षी तक के गाँवों तथा जैन तीर्थों का प्राचीन-अर्वाचीन इतिहास आलेखित है। इसमें दो परिशिष्ट भी संयोजित हैं। प्रथम परिशिष्ट में विहार के दरम्यान आये हुये छोटे-बड़े गाँवों के क्रमवार नाम, एक गाँव से दूसरे गाँव का अन्तर (कोश), उनमें जैनों की गृहसंख्या धर्मशालोपाश्रय, जिनालय संख्या और स्थिरवास के दिन का जनक कोष्ठक दर्ज है। द्वितीय परिशिष्ट में इस भाग में आये हुए जिनालय, जिन-प्रतिमा, धर्मशाला और उपाश्रय के संस्कृत, गद्य-पद्यमय प्रशस्ति तथा शिलालेखों का सरल हिन्दी अनुवाद गुम्फित है।'[1]

इस कथ्य में चतुर्थ भाग का सार आ गया है। इससे इस भाग के महत्त्व का प्रतिपादन होता है। गाँव-नगरों का जो विवरण दिया गया है वह उनके महत्त्व को प्रदर्शित करता है। गाँव-नगरों के इतिहास को आपने ऐतिहासिक ढंग से ही लिपिबद्ध किया है। ऐतिहासिक वर्णन के साथ ही साथ आपने गाँव-नगर के भौगोलिक परिवेश का वर्णनकर अपने इस विहार-दिग्दर्शन साहित्य का महत्त्व और अधिक बढ़ा लिया है।

अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आपने परिशिष्ट में संस्कृत प्रशस्ति लेख, शिलालेख आदि का हिन्दी अनुवाद देकर उन पाठकों, विद्वानों पर उपकार ही किया है, जो संस्कृत भाषा नहीं जानते या समझते हैं।

1. श्री यतीन्द्र विहार दिग्दर्शन-भाग-४, पृ. १४-१५ हार्दिक संदेश

हिन्दी अनुवाद के माध्यम से इन लेखों की ऐतिहासिक सामग्री का सहज ही समुचित उपयोग हो सकता है। एक गाँव से दूसरे गाँव तक की दूरी को अंकितकर पाद-विहारी साधु-साध्वियों के लिए सुविधा उपलब्ध कर दी है। यद्यपि अब मार्ग काफी सुगम हो गये हैं, तथापि दूरी तो वही है। हाँ, यह हो सकता है कि इन ग्राम-नगरों के मध्य कुछ गाँव और बस गये हों। ठहरने आदि की सुविधाओं में विस्तार ही हुआ होगा।

इस प्रकार यह सहज ही कहा जा सकता है कि आप द्वारा रचित श्री यतीन्द्र विहार दिग्दर्शन भाग १,२,३,४ आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने उस समय थे। दूसरी बात इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण यह है कि गाँवों और कस्बों का इतिहास इन पुस्तकों के माध्यम से सहज ही तैयार किया जा सकता है।

तीसरी बात जैन धर्मावलम्बियों की दृष्टि से यह है कि उस समय की अपनी स्थिति से वर्तमान स्थिति की तुलना कर देखें कि कितनी उन्नति अथवा अवनति हुई है। निश्चय ही आचार्यश्री ने इन पुस्तकों की रचना कर बहुत बड़ा उपकार किया है।

(५) मेरी नेमाड़ यात्रा :

यह पुस्तक भी विहार-दिग्दर्शन ही है। यदि इसे भी विहार दिग्दर्शन भाग के रूप में प्रकाशित कर दिया जाता तो भी कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि एक ही क्षेत्र से सम्बन्धित होने से आचार्य भगवन् ने इसे स्वतंत्र पुस्तक का स्वरूप प्रदान करना उचित समझा। कुछ भी हो, 'मेरी नेमाड़ यात्रा' काफी महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रस्तुत करनेवाला दस्तावेज है।

इस पुस्तक के प्राथमिक वक्तव्य में आचार्यश्री ने लिखा है-

'इस प्रांत में दो-तीन मर्तबा हमको भी विहार करने का अवसर मिला। उसके दरम्यान हमने यहाँ के प्राचीन जिनालय, उनके खण्डहर, उनके ध्वंसावशेष खंडित मूर्तियाँ, उनके अवयव, नदियाँ, तालाब, शिक्षा, व्यवसाय, भाषा, सभ्यता और लोकस्थिति आदि का निरीक्षण किया।

बस प्रस्तुत 'मेरी नेमाड़ यात्रा' पुस्तक में उन्हीं बातों का दिग्दर्शन मात्र वृतांत लिखा गया है, जिसको उक्त उद्देश्य की अभिवृद्धि स्वरूप

समझना चाहिए।'[1]

इस पुस्तक के प्रारम्भ में आचार्यश्री ने नेमाड़ का भौगोलिक वर्णन प्रस्तुत किया है। सर्वप्रथम आपने नेमाड़ और उसके विभाग बताये हैं, फिर इस प्रदेश के नाम पर विचार किया गया है। इसमें आपने माहिष्मती के संक्षिप्त इतिहास पर भी प्रकाश डाला है। तदुपरांत आपने बताया कि नीमाड़/नेमाड़ के मुख्य दो विभाग हैं-एक मध्य प्रांत (अंग्रेजी राज्य का नीमाड़) और दूसरा मध्य भारत (देशी रियासतों का नीमाड़)। फिर दोनों के विस्तार क्षेत्रफल को बताया गया है। इसके पश्चात् विंध्याचल और सतपुड़ा पर्वतों का विवरण है। इस विवरण में इन पर्वतों का विस्तार और उनकी प्रमुख चोटियों की ऊँचाई भी दी गयी है। पर्वतों के विवरण के पश्चात् नीमाड़ क्षेत्र में बहनेवाली प्रमुख नदियों का वर्णन किया गया है। इन नदियों के परिक्षेत्र का सूक्ष्म वर्णन किया गया है। नदियों के वर्णन के पश्चात् नीमाड़ की गर्मी व वर्षा का विवरण है, फिर आवागमन के साधन, जनसंख्या और शिक्षा, व्यवसाय और अंधविश्वास, भाषा और सभ्यता का विवरण दिया गया है।

यहाँ आपने नेमाड़ी और हिन्दी भाषा के अंतर को स्पष्ट किया है तथा हिन्दी के अक्षर-शब्दों का नेमाड़ी रूपांतर भी दिया है। साथ ही सर्वनाम, वर्तमान क्रिया आदि का भी विवरण दिया है। नेमाड़ का भौगोलिक वर्णन और भाषा-विषयक विवरण देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्यश्री किसी भूगोलवेत्ता और भाषाविद् से कम नहीं थे। आपका भूगोलज्ञान और भाषाज्ञान अद्वितीय था।

इतना वर्णन करने के पश्चात् आपने नेमाड़ के कतिपय प्राचीन कस्बों का वर्णन किया है। ऐसे कस्बों में बड़वानी, बुरहानपुर, खरगोन, सिघाणा, कुक्षी, बाग, चिकलीढोला आदि का ऐतिहासिक वर्णन करते हुए तत्रस्थ जिनालयों का भी उल्लेख किया गया है।

नेमाड़ के एक परगना का विवरण देते हुए आपने बताया कि पहले यह नेमाड़ में ही सम्मिलित था। बाद में नेमाड़ से दूसरी गणना अलग होने लगी। इसमें आलीराजपुर और जोबट ये दो रियासतें हैं। तदुपरांत आपने नीमाड़ में श्वेताम्बर तीर्थ के अन्तर्गत श्री लक्ष्मणी, तालनपुर, मांडवगढ़

1. मेरी नेमाड़ यात्रा, पृ. ४-५

का विवरण दिया है। इनमें मांडवगढ़ तीर्थ का वर्णन आपने अति विस्तार से किया है। तदुपरांत आपने अपनी निष्पक्ष दृष्टि का परिचय देते हुए नीमाड़ में दिगम्बर सिद्ध क्षेत्रों का उल्लेख किया है। इनमें चूलगिरि (बावनगजा), सिद्धवर कूट और पावागिरि है। आपने इनका स्थिति और कला की दृष्टि से महत्त्व भी प्रतिपादित किया है।

सारपूर्ण भाषा में कहें तो यह पुस्तक नेमाड़ के भौगोलिक वर्णन के साथ जैन तीर्थों और प्रमुख कस्बों का इतिहास उचित रीत्यनुसार प्रस्तुत करती है। वर्तमान सन्दर्भ में भी यह पुस्तक महत्त्वपूर्ण है। आज भी यह पाठकों तथा शोधकर्ताओं का मार्गदर्शन करने में सक्षम है। आकार-प्रकार में लघु होने के बावजूद सामग्री की दृष्टि से किसी विशाल ग्रंथ से कम नहीं है। ऐसी महत्त्वपूर्ण पुस्तक का प्रणयनकर आचार्यश्री ने पाठक वर्ग और शोधकर्ताओं पर उपकार ही किया है।

(५) मेरी गोड़वाड़ यात्रा :

यह पुस्तक मेरी नेमाड़ यात्रा की भाँति ही है। इसका प्रकाशन सन् १९४४ में हुआ था। इसके प्रारम्भ में 'इतिहास में जैन तीर्थों का स्थान' शीर्षकान्तर्गत शिल्पकला और मूर्तिकला पर संक्षेप में विचार प्रस्तुत किये गये हैं। तत्पश्चात् आपने जैनों की तीर्थ स्थापत्य कला का उत्कर्ष शीर्षकान्तर्गत लिखा है-

'वैसे तो धर्म-तीर्थों की स्थापना संसार में सर्वत्र मिलती है। यूरोप, अमरीका, जापान आदि देशों में भी धर्मस्थान विशेष सुन्दर, भव्य, दीर्घकाय और कला के सजीव नमूने बने खड़े हैं, परन्तु भारत के तीर्थ स्थानों को बनाने में एक दूसरा ही ध्येय प्रधान रहा है, जो अन्यत्र संसार में कहीं गौण रूप में और कहीं नहीं भी रहा है।

हमारे यहाँ तीर्थों की स्थापना से तीर्थंकरों, महापुरुषों तथा अवतारों के स्मारक बनायें रखने के साथ-साथ उससे एक और कार्य लिये जाने का ध्येय विशेष रहा है, जो अन्य देशों के धर्मस्थानों में देश कालस्थिति के प्रभाव से थोड़ी बहुत अंशों में ही स्पर्श कर सका है। वह ध्येय है वैभव, सामाजिक स्थिति, सभ्यता, गौरव, उत्थान, उच्चता और इष्ट के प्रति अपार श्रद्धाभक्ति इन धर्म स्थानों के शरीरों के प्रति रोम-रोम से उद्भाषित हो। सर्वप्रधान ध्येय यह था कि ये धर्म स्थान

शिल्पकला के भी अनन्यतम उदाहरण एवं आदर्श हों। जितना द्रव्य भारतवर्ष ने अपने इन तीर्थ स्थानों में व्यय किया है, उसका सहस्रांश भी किसी देश ने व्यय नहीं किया।

मुहम्मद गजनवी के आक्रमणों का मुख्य ध्येय इन स्थानों से द्रव्य अपहरणकर गजनी को सम्पन्न एवं समृद्ध बनाने का था। अन्य आक्रमणकारियों का भी यह ध्येय प्रधान या गौणरूप से सदा रहा है।'[1]

जैन धर्मस्थानों/तीर्थस्थानों के सम्बन्ध में आपने लिखा है-

'जैन समाज ने अपेक्षाकृत धर्म स्थानों को विशेष महत्त्व दिया है। कला और समृद्धि दोनों दृष्टियों से स्मृति रूप से आज भी सहस्रों श्रीसंघ प्रतिवर्ष इन तीर्थों की यात्रा निकालते रहते हैं और इन तीर्थों में अपार धनराशि एकत्रित होती रहती है, जो तीर्थ-मंदिरों के जीर्णोद्धार में व्यय होती रहती है।.... जैन तीर्थों में शिल्पकला उत्तरोत्तर निखरती रही है। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव है जैन धर्म का विस्तार और स्थायित्व।'[2]

उपर्युक्त उद्धरण में आपश्री ने भारतीय एवं पौर्वात्य तीर्थों एवं कला के अन्तर को स्पष्ट किया है। आगे आपने यात्रा की आवश्यकता और पारमार्थिक लाभ को स्पष्ट करते हुए श्रीसंघों के निष्क्रमण और लक्ष्मी के सदुपयोग पर प्रकाश डाला है। इसके साथ ही आपने प्राचीनकाल में संघ निष्क्रमण की परम्परा का उल्लेखकर यह प्रमाणित किया है कि संघ यात्रा निकालना कोई नयी परम्परा नहीं है।

'जैन धर्म की दृष्टि से मरुस्थल का महत्त्व' इस शीर्षक के अन्तर्गत आपने इस क्षेत्र में जैन धर्म के विकास को बताया है। इसके साथ ही आपने गोड़वाड़ (राजस्थान का एक क्षेत्र) के सम्बन्ध में लिखा है कि गोड़वाड़ प्रांत इस समय दो भागों में विभक्त है। एक देसुरी परगना और दूसरा बाली परगना। इतना लिखने के उपरांत आपने इस क्षेत्र में समय-समय पर रहे विभिन्न वंशों के शासन का उल्लेख किया है। आपने देसुरी और बाली के इतिहास के साथ ही कुछ भौगोलिक परिवेश का भी वर्णन किया है। इसके उपरांत आपने गोड़वाड़ प्रांत के जैन आबादीवाले गाँवों की सारणी प्रस्तुत कर वहाँ के मूलनायकजी, धर्मशाला, उपाश्रय, पोरवाल, ओसवालों के घर आदि जानकारी उपलब्ध कराई है।

---

1. मेरी गोड़वाड़ यात्रा पृष्ठ ११-१२ 2. मेरी गोड़वाड़ यात्रा पृष्ठ १२

प्रस्तुत पुस्तक में श्री वरकाणा तीर्थ, श्री नाड़ोल तीर्थ, श्री नाड़ोलाई तीर्थ, श्री सुमेर (सोमेश्वर) तीर्थ, श्री महावीर मुछाला तीर्थ, श्री राणकपुर तीर्थ के इतिहास आदि का विस्तृत वर्णन किया है।

इन तीर्थों का इतिहास वर्तमान संदर्भ में भी उपयोगी है। यह इतिहास जैन तीर्थों और जैन कला पर शोध करनेवाले शोधार्थियों के लिए मार्गदर्शक का काम करनेवाला है। पुस्तक के अंत में अपने गुरुदेव श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. का जीवन चरित्र तथा कुछ महत्त्वपूर्ण पावन प्रेरक प्रसंग भी दिये गये हैं। इसका प्रमुख कारण यह रहा कि पौष शुक्ला ५,६,७ के दिन पंचतीर्थी यात्रा की वापसी पर संघ का मुकाम खुड़ाला रहा। चूँकि पौष शुक्ल सप्तमी गुरुदेव की परम पूज्य कलिकाल सर्वज्ञ भट्टारक जैनाचार्य श्रीमद्विजय राजेन्द्र सूरीश्वरजी की जन्मतिथि तथा पुण्यतिथि दोनों ही है और गुरु सप्तमी के रूप में आजकल न केवल सम्पूर्ण भारत में, वरन् विश्व में भी समारोहपूर्वक मनायी जाती है।

इस कारण प्रसंगानुसार गुरुदेव का जीवनचरित्र इसमें समाहित कर दिया गया प्रतीत होता है, जो स्वाभाविक ही है। ऐसा करने से पुस्तक का और भी महत्त्व बढ़ गया।

इस प्रकार यदि हम आचार्य श्रीमद्विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा रचित यात्रा साहित्य पर विचार करते हैं, तो पाते हैं कि यह यात्रा साहित्य इतिहास के साथ ही साथ भूगोल और कला विषयों पर भी प्रकाश डालता है। यह यात्रा साहित्य जहाँ पाद-विहारी जैन साधु-साध्वियों के लिए उपयोगी है, वहीं इस क्षेत्र के शोधार्थियों के लिए भी मार्गदर्शन प्रदान करनेवाला है। आज के इस युग में भी यह साहित्य काफी उपयोगी है। इसकी आवश्यकता की अनुभूति आज भी होती रहती है। ऐसा साहित्य रचकर आचार्यश्री ने समाज पर उपकार ही किया है।

आप क्या करते हैं इससे अधिक आप किस
भाव से करते हैं उस पर कर्म फल
आधारित है।

"शासन-आज्ञा"

जिनेश्वर भगवंत की आज्ञानुं-सार चलने,
बैठने, उठने, खाने, सोने, खड़े रहने की क्रिया के
समय जयणा पालन के भाव है
फिर अगर अजयणा हो जाय तो भी धर्म के खाते में।

दान, शील, तप क्रिया का फल क्रिया के समय
के परिणाम पर आधारित है अतः
भाव धर्म को सर्व श्रेष्ठ धर्म कहा है।

आरोग्य [illegible] क्रिया का फ[illegible] आरोग्य
हो[illegible] परिणाम पर आधारि[illegible]शुद्ध तो
[illegible]व धर्म को सर्व श्रेष्ठ ध[illegible]र।

PRINTED BY
SANJAY PLASTIC
SURAT.
M.98525-97543